* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

र्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
षित अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १५ | गौराब्द ४८३, मास--माधव २१, वार--कारणोदशायी, बृहस्पतिवार, २६ माघ, सम्वत् २०२६, १२ फरवरी १६७० | संख्या ८-६

जनवरी--फरवरी १६७०

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

द्वारावतीप्रवेशे तत्रत्य प्रजानां श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १।११।५-६)

भगवान् श्रीकृष्णने जब हस्तिनापुरसे लौटकर द्वारकापुरीमें प्रवेश किया, तब वहांकी प्रजा उनकी स्तुति इस प्रकारसे करने लगी—

नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं
विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ।
परायणं क्षेममिहेच्छतां परं
न यत्र कालः प्रभवेत् परः प्रभुः ॥५॥

हे नाथ ! हम आपके उन सुन्दर और सर्व सद्गुणसम्पन्न श्रीचरणकमलोंकी सर्वदा वन्दना करते हैं, जिन पादपद्मोंके आश्रय लेने पर ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवताओं पर भी अपना

प्रभुत्व जमानेवाले साक्षात् कालपुरुष आश्रयकारीका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते और इस संसारमें चरम कल्याण चाहनेवाले व्यक्तियोंके आश्रयदाता ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि देवता एवं सनकादि ऋषि लोग परम गौरवके साथ जिन चरणकमलोंकी आराधना करते रहते हैं ॥५॥

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन
त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ।
त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं
यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥६॥

अतएव हे विश्वभावन ! हे जगत्के पालन करनेवाले हरि ! आप ही हमारा परम कल्याण करें। आप ही हमारे माता, पिता, बन्धु और स्वामी हैं और आप ही हमारे सद्गुरु एवं परम आराध्यदेव हैं। आपके पुनरागमनसे हम लोग कृत-कृतार्थ हो गये ॥६॥

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं
त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ।
प्रेमस्मितस्निग्ध निरीक्षणाननं
पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥७॥

आपके वियोगसे हम लोग अनाथ हो गये थे। आपको पाकर हम लोग सनाथ हो गये हैं। क्योंकि स्वर्गवासी देवताओंके लिए भी परम दुर्लभ, अतुल प्रेमपूर्ण, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त, सुन्दर नयनयुक्त, बदनचन्द्रिकाद्वारा परिशोभित सर्वसौन्दर्यसारस्वरूप आपके अनुपम रूपका दर्शन हमारे लिए सर्वदा प्राप्त होता रहता है ॥७॥

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्
कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेत्
रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥८॥

हे पद्मपलाशनयनवाले हरि ! जब आप अपने अत्यन्त प्रिय बन्धुओंका दर्शन करनेकी अभिलाषासे हमें परित्याग कर हस्तिनापुर और मथुराकी ओर (अर्थात् गोकुल या नन्दव्रजकी ओर) चले जाते हैं, उस समय हे अच्युत हरि ! आपके वियोगसे हमारे लिए बिना सूर्यके आँखोंकी अन्धताके समान एक क्षण काल भी कोटि वर्षोंकी तरह जान पड़ता है ॥८॥

कथं वयं नाथ चिरोषिते त्वयि
प्रसन्नदृष्ट्याखिलतापशोषणम् ।
जीवेम ते सुन्दरहास शोभित –
मपश्यमाना वदनं मनोहरम् ॥९॥

हे स्वामिन् ! आप बहुत दिनोंतक दूर रहनेसे प्रफुल्ल दृष्टिके द्वारा सभी प्रकारके तापोंको दूर करनेवाले, मनोहर मुसकानद्वारा अत्यन्त शोभायमान, मनको तुरन्त आकर्षण कर लेनेवाले इस मुखमण्डलका दर्शन न पाकर हम लोग किस प्रकार अपना जीवन धारण कर सकेंगे ? ॥९॥

॥ इति द्वारावत्यप्रजानां श्रीकृष्णस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥

॥ इति द्वारकापुरी प्रजाओंका श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

रे मन ! गोविन्द नाम क्यों बिसारौ

क्यों तू गोविन्द नाम बिसारौ ?
अजहूँ चेति, भजन करि हरि कौ, काल फिरत सिर ऊपर भारौ ॥
धन सुत-दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ ।
सूरदास भगवन्त-भजन बिनु, चल्यौ पछिताय, नयन जल ढारौ ॥

(सूर-पदावलीसे)

त्रियुग का धर्म और कृष्णनाम-संकीर्तन

जिन महान् व्यक्तियोंने श्रीभगवानके श्रीनामका ऐकान्त रूपसे आश्रय ग्रहण किया है, और श्रीनामाश्रयको छोड़कर अन्यान्य साधन प्रणालियोंके प्रति उदासीन हो गये हैं, उन्हें हम प्रणाम करते हैं।

परमहंसकुलशिरोमणि श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

"कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्॥

(भा० १२।३।५२)

वर्तमान काल—कलि काल है। इस कलि कालमें ध्यान असंभव हो गया है। मनुष्यों-की चित्तवृत्ति सर्वदा ही विक्षिप्त है। अतएव अब विष्णु या भगवानका ध्यान असंभवपर हो गया है। हम लोग कई समय विष्णुका ध्यान करने जाकर इन्द्रियतर्पणपर विषयोंकी ही चिन्ता करते हैं। अतएव अधोक्षज ध्यान-की संभावना बहुत कम है। ध्यान-प्रणाली आरम्भ करनेके पहले यह विचार करनेकी आवश्यकता है कि कौन ध्यान कर रहा है, किनका ध्यान कर रहा है और वह ध्यान ही क्या है? ध्येयवस्तु वास्तव-सत्य वस्तु होनेकी आवश्यकता है, ध्याताकी वास्तव-नित्य सत्ता रहनेकी आवश्यकता है और ध्यान-क्रिया भी निरवच्छिन्न तैलधाराकी तरह अप्रतिहत या बाधारहित गति-विशिष्ट होनेकी आवश्यकता है। नहीं तो यथार्थ ध्यान नहीं होता।

वर्तमान-कालमें विक्षिप्तचित्तवृत्तिद्वारा(कलि कल्मषपूर्ण हृदयद्वारा) एक ध्येय वस्तुका ध्यान सर्वदा नहीं होता,बहुतसे ध्येयवस्तुओंका ध्यान होता है। जो सभी विषय हमलोग जड़ेन्द्रियों-द्वारा देखते हैं,उन्हींका हमलोग ध्यान करते हैं। हमारीजडेन्द्रियोंद्वारा ग्रहणीय विषयहीहमारी ध्येय वस्तुएँ हैं, नित्य वास्तव अधोक्षज सत्य-वस्तु भगवान हमारे ध्यानद्वारा गोचरीभूत नहीं होते। सत्ययुगमें वास्तव-सत्यवस्तु ध्यान-के द्वारा पाये जा सकते थे। किन्तु वर्त्तमान विवादपूर्ण युगमें सत्य बहुत कुछ तिरोहित हो गया है। अतएव सत्यकी साधन-प्रणाली कलियुगकी विक्षिप्त चित्तवृत्तिके लिए कार्य-कारी नहीं होती। विक्षिप्त-मनके द्वारा यथार्थ ध्येय वस्तुका ध्यान नहीं होता, बल्कि दूसरी वस्तुका ध्यान होता है। हम लोग कर्ममार्गके पथिक होकर जिन सभी विषयोंका ध्यान करते हैं, उन्हें ध्यान करनेसे हमारी कर्मप्रवृत्ति ही बढ़ जायगी। कलिकालमें हमारी योग्यताकी(निष्पाप निर्मल अविक्षिप्त

चित्तवृत्तिकी) कमीके कारण ध्यान-क्रिया असंभव है।

त्रेता-युगमें विष्णुका यजन कार्य यज्ञ द्वारा सम्पन्न होता था। त्रेता-युगमें अनुशीलन का विषय-'मख' या 'यज्ञ' है। यज्ञकार्यमें ब्रह्मा, अध्वर्यु, उद्गाता और होता-इन चार व्यक्तियों-की और समिध्, आज्य, अग्नि आदि यज्ञोपक-रण या यज्ञकी सामग्रियोंकी आवश्यकता है। त्रेतायुगके समय असुर स्वभाववाले व्यक्तियोंने यज्ञविधिके प्रति आक्रमण नहीं किया। किन्तु पश्चात् ऐसा समय आया, जब नाना-प्रकारसे यज्ञ-क्रियाके प्रति आक्रमण होने लगा।

त्रेता-युगमें सबसे श्रेष्ठ बुद्धिमान व्यक्ति लोग यज्ञके द्वारा सर्वयज्ञेश्वर सर्वयज्ञभोक्ता विष्णुकी ही आराधना करते थे और यज्ञे-श्वरके अवशेषद्वारा देवता लोगोंका याजन-यजन करते थे। दूसरे दूसरे लोग यज्ञद्वारा पितरों और देवताओंकी उपासना करते थे। क्रमशः दूसरे व्यक्ति यज्ञेश्वरकी आराधना न कर दूसरे देवताओंको भी विष्णुके समान मानकर उनको उपासना करने लगे।

चार्वाक-ब्राह्मण आदि व्यक्ति क्रमशः पितृ-यज्ञमें बाधा देनेकी चेष्टा करने लगे। चार्वाक-ब्राह्मण कहने लगे—"धूर्त प्रचारक लोगोंने ही पितृ-श्राद्धादिकी व्यवस्था कर एवं राजाओं को यागादिमें प्रवृत्त कराकर उनके निकटसे प्रचुर अर्थ-संग्रह कर अपने अपने परिजनोंका उसके द्वारा प्रतिपालन करनेके लिए ही ऐसे उपायका अवलम्बन किया है। ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ में जिस पशुकी हत्या की जाय, वह स्वर्गलोकमें पहुँचता है—यदि यही सत्य है और इन सभी वाक्योंपर यज्ञकारीका सम्पूर्ण विश्वास है, तो वे लोग यज्ञमें अपने अपने पिता माता आदिका मस्तक छेदन क्यों नहीं करते? ऐसा करने पर तो अनायास ही पिता-माता आदि स्वर्ग प्राप्त कर सकते थे और उन्हें भी पिता-माताकी स्वर्ग-प्राप्ति के लिए श्राद्धादि कर्म कर वृथा कष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं होती। और यदि श्राद्ध करनेसे ही मृतव्यक्ति तृप्त होता है, तब कोई व्यक्ति विदेश जानेके लिए तैयार होने पर उसे पाथेय सामग्री देने-की क्या आवश्यकता है? घरमें उसके उद्देश्य से किसी भी ब्राह्मणको भोजन करानेसे ही तो उसकी तृप्ति हो सकती है! यदि इस पृथिवी-में श्राद्ध करने से स्वर्गस्थित व्यक्तिकी तृप्ति होती है, तो आङ्गनमें श्राद्ध करनेसे प्रासाद (महल) के ऊपर स्थित व्यक्तिको तृप्ति क्यों नहीं होती? जिसकेद्वारा थोड़ेसे ऊपर स्थित व्यक्तिकी ही तृप्ति नहीं होती, उसकेद्वारा किस प्रकार अत्यन्त ऊपर स्वर्गस्थित व्यक्ति-की तृप्ति होगी? अतएव पितृ-श्राद्धादि केवल धूर्त्त लोगोंकी उपजीविकामात्र है। अतएव उसकेद्वारा कोई फल नहीं प्राप्त होता।" इत्यादि इत्यादि।

जब त्रेता-युगमें यज्ञकार्यमें बाधाएँ उप-स्थित होने लगीं, तब द्वापर युगका प्रादुर्भाव हुआ। तब अर्चनद्वारा विष्णुकी आराधना-

की व्यवस्था की गई। विष्णुकी आराधनामें पशुवधका उद्देश्य नहीं है। ऊषा, वायु, सूर्य आदि इन्द्रियतर्पणके कार्यमें सहायता करनेवाले इन्द्रियज्ञानग्राह्य देवताओं या पितृ लोगों की पूजा-प्रणाली—जिसने त्रेता-युगमें प्रधानता प्राप्त की थी, वही द्वापर युगमें परिवर्तित होकर विष्णुकी परिचर्या-क्रियाके रूपमें बदल गई। सात्वत व्यक्ति जिस प्रकारसे सर्वेश्वर भगवान् विष्णुकी आराधना करते थे, वही विष्णुपरिचर्या-प्रणाली है। यज्ञेश्वर विष्णुको छोड़कर सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण आदि अक्षयज्ञानगम्य नाना देवताओंकी परिचर्या या सेवा ही असात्वत या विष्णुविरोधी सम्प्रदायमें प्रचलित हुई।

द्वापर-युगके अन्तमें कलिकालके प्रारम्भमें बौद्ध, जैन आदि असत् सम्प्रदाय भी देव-पितृ कर्मादि तथा विष्णुकी उपासनामें बाधा उपस्थित करने लगे। किन्तु सर्वकाल ही अनादि बहिर्मुख जीव सात्वत व्यक्तियोंकी विष्णु परिचर्या-प्रणालीको विकृत करनेकी चेष्टा करते रहते हैं। विष्णुपूजा को उपलक्ष्य कर देवल-सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। ये सभी देवल-सम्प्रदाय भुक्त व्यक्ति विष्णु-पूजाकी छलना कर उदर-भरणादि-कार्य में लिप्त हो गये—विष्णु-पूजाके बदले जिह्वोदरपरायणहो गये—सेवा करनेके बदलेमें भोगोंमें आसक्त हो गये। कलियुगमें द्वापरको विष्णुपरिचर्या होनेके बदले उदरकी सेवा, स्त्री-पुत्रादिकी सेवा और शरीरकी सेवा होते देखकर सात्वत महाजन लोग अन्य व्यवस्था करने के लिए बाध्य हुए।

श्रीमदाचार्य आनन्दतीर्थ पूर्णप्रज्ञ मध्वमुनिने अपनेद्वारा रचित मुण्डकोपनिषद् भाष्यमें श्रीनारायण-संहिताका यह सात्वत वचन प्रमाण उद्धार कर कहा है—

"द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः।
कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः॥

द्वापरयुगमें उस कालके व्यक्ति केवलमात्र पाञ्चरात्रिक-विधानके अनुसार विष्णुका अर्चन करते थे। किन्तु वर्त्तमान कलियुगमें केवलमात्र श्रीनामरूपी हरिकी पूजा होती है।

द्वापरयुगकी विष्णुपरिचर्या-प्रणालीमें प्रविष्ट व्यभिचारका कुछ अंश वर्त्तमान काल में भी आ गया है। द्वापर युगमें जिस प्रकार सात्वत व्यक्तियोंको विष्णुपूजा-प्रणालीके साथ बराबरी करनेके लिए अवान्तर या गौण-पूजा-प्रणालीका प्रचलन हुआ था और विष्णुपूजाके बदलेमें उदरपूजा आरम्भ हो गई थी, उसीका कुछ अवशेष हो वर्त्तमानकालमें वर्त्तमान है। वर्त्तमान समयमें विष्णुपूजाके बदलेमें अक्षजज्ञान प्राप्य नानाप्रकारके देवदेवियोंकी पूजारूपी देवल-वृत्ति चल रही है। अभी श्रीनारायणपूजाके बदलेमें 'शालग्रामद्वारा बादाम तोड़ने' का कार्य निर्विघ्न

रूपसे चल रहा है। बाहरमें अर्चन-प्रणाली-की शिक्षा कर जीविका-निर्वाहका एक उपाय सृष्टि कर लिया गया है। उसकेद्वारा स्त्री-पुत्र प्रतिपालनरूप नाना प्रकारके भोगोंकी प्रबलता बढ़ रही है।

कलिकालमें द्वापर युगका अर्चन असम्भव है। कलिकालमें श्रीनाम-द्वारा भगवानका अर्चन होगा या श्रीनाम-कीर्तन के द्वारा विष्णु की आराधना होगी। किन्तु कलिमें जिस प्रकार सात्वत महाजनोंद्वारा सम्पन्न द्वापरीय अर्चन-प्रणालीका व्यभिचार कर हम लोग जिस प्रकारसे अपने पेट भरनेके लिए 'देवल' हो पड़ते हैं, कलिकी वृद्धि या अधिकता होनेपर भी उसी प्रकार व्यभिचारमें अवस्थित होकर हम लोग नामविक्रयी हो पड़ेंगे। हम लोग ग्रन्थ पाठ करते हैं, ग्रन्थ प्रकाश करते हैं, किस लिए ? कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा संग्रहके लिए। हम लोग सेवाका नाम लेकर अर्थ संग्रह करते हैं—पेट भरते हैं। हमलोग कीर्तन करते हैं, कीर्त्तन करनेके लिए नहीं, हरि-सेवा के लिए नहीं, इन्द्रियतर्पण या भोगके लिए लिए ही। हम लोग यदि दूसरे कार्य करनेसे अधिक अर्थ प्राप्त करते हैं, अधिकतर प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, तो कीर्त्तन छोड़कर दूसरे कार्य करनेके लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। यदि कोई कहते हैं–'भागवत पाठ कर अर्थ नहीं मिलेगा' तो हम लोग पाठ छोड़कर कहते हैं–"भागवत और दूध नहीं देता।" यदि कोई कहें—"कीर्त्तन कर अर्थ नहीं मिलेगा, मन्त्र देकर अर्थ नहीं मिलेगा, भाषण द्वारा अर्थ नहीं मिलेगा", तो हम लोग लोगोंके द्वारपर कीर्त्तन करना छोड़ देते हैं, मन्त्र देनेका व्यवसाय छोड़ देते हैं, भाषण देना बन्द करते हैं। कनक-कामिनी या प्रतिष्ठा प्राप्त करनेपर हम लोगोंका कपटसेवा-अभिनय भी बन्द हो जाता है। अतएव हम लोगोंका हरिनाम संकीर्त्तन, भागवत-पाठ और वक्तृता कलिके स्थान कनक-कामिनी-प्रतिष्ठादि प्राप्तिके लिए ही हो जाती हैं। अतएव ये सभी अभिनय कभी भी नामकीर्त्तन, भागवत-पाठ या भाषण नहीं हैं। ये सभी चेष्टाएँ नामापराध या व्यवसाय के अन्तर्गत हैं। बनियोंकी वृत्ति कदापि सेवा नहीं है—"न स भृत्यः, स वै वणिक्।" यदि कोई ठाकुरको देखकर प्रणामी न दें, तो हम लोग ठाकुर-सेवा परित्याग कर देते हैं। मेरे पेट भरनेके लिए ही तो ठाकुर-सेवा, भागवत पाठ या नामकीर्त्तन है ! ऐसे कार्य किन्तु महाप्रभु के समयमें प्रचलित नहीं थे; स्वयं महाप्रभु और उनके पार्षदोंने भी कदापि ऐसा जघन्य, घृणित व्यवसाय नहीं किया था। परकालमें भागवत-विक्रयी, मन्त्र-विक्रयी, नाम-विक्रयी होंगे अर्थात् साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन-स्वरूप भागवत, साक्षात् नामी कृष्णस्वरूपाभिन्न श्रीनाम, साक्षात् सच्चिदानन्द भगवत्स्वरूप श्रीभगवानकी श्रीमूर्तिको खड़ा कर उसके द्वारा अपने अपने इन्द्रियतर्पणरूपी सेवा करा लेंगे-इस घृणित उद्देश्यसे श्रीगौर-

सुन्दर, श्रीनित्यानन्द, श्री अद्वैताचार्य, ठाकुर श्रीहरिदास या छः गोस्वामियोंने कदापि जगतमें हरिनाम-प्रचार या भागवत-कीर्त्तन नहीं किया अथवा किसीको भी यह शिक्षा नहीं दी।

प्रत्येक व्यक्तिविशेषके जीवनमें चारयुगों के कृत्य अर्थात् ध्यान, यज्ञ, पूजा और कीर्त्तन आदि कम या अधिक परिणाममें होते रहते हैं। जबजीवआत्मवृत्तिके अनुशीलनद्वारा शुद्ध-हरिसेवोन्मुख होता है, उस समय ही ये सभी कृत्य शुद्ध रूपसे प्रकाश पाते हैं। किन्तु जब जीव मनोधर्मके द्वारा मोहित हो जाता है, तब उस साधनप्रणालीमें दोष आ जाता है। मनो-धर्मके वशीभूत होकर हम लोग इन्द्रियग्राह्य विषयोंका ही ध्यान करते हैं, इन्द्रियोंके भोगा-नलमें आहुति देनेको ही यज्ञ समझते हैं, श्रीमूर्तिके निकटमें नैवेद्य देते समयमन ही मन चिन्ता करते हैं—'ये सभी वस्तुएँ कब मैं घर ले जाकर स्त्री-पुत्रादि आत्मीय-स्वजनोंको दूंगा और स्वयं भोग करूँगा।' कीर्त्तन करते समय सुर-तान-लय-मानके अहङ्कारमें मदमत्त होकर सोचते हैं—'किस प्रकार मेरा कीर्त्तन श्रोताओंके हृदयको आकर्षण करेगा, उनके लिए अच्छा मालूम होगा'—आदि आदि। उस समय भगवानको भुलाकर हमलोग सेव्य-तत्व कृष्णके कर्णोंको आनन्द देनेके बदले अपने जड़ीय कानोंको आनन्द देनेकी कुचेष्टा करते हैं। उस समय हमारे कीर्त्तनद्वारा कृष्णेन्द्रिय प्रीति नहीं होती,बल्कि आत्मेन्द्रिय प्रीति या कामाग्नि ही पूर्त्ति होती है।

कलिकालमें विक्षिप्त चित्तके द्वारा ध्यान असम्भव है। 'विक्षिप्त चित्तको प्रत्याहारादि द्वारा संयत कर पश्चात् ध्यान करूँगा'—ऐसी आशा रखना भी निरर्थक है। क्योंकि मनो-धर्मी जीवके बाधायुक्त ध्यानद्वारा नित्य वास्तव-चिद्विग्रहका ध्यान नहीं हो सकता। मनोधर्मका ध्यान ध्यान नहीं है। निर्मल आत्मवृत्ति द्वारा ही ध्यान संभव है। कलि-कालमें यज्ञादि विधियाँ असंभव हैं। क्योंकि बहुतसे द्रव्य और बहुत समयद्वारा साध्य यज्ञादि कार्यमें कलिके जीवकी क्षुद्र परमायु नष्ट नहीं की जा सकती। कलिकालमें दुर्बल जीवोंके लिए सम्यक् प्रकारसे पूजा करनेकी भी योग्यता नहीं है। पूजा करने जाकर आसनपर कुछ समय बैठनेमात्र से ही कमरमें दर्द होने लगता है; विशेषकर कई समय काल, स्थान, पात्र और पूजाके द्रव्योंमें शुद्धाशुद्धि-विचारकी संभावना ही नहीं है। शौचाशौचादि विचार पूजा कालमें विशेष आवश्यक है,काला-काल विचार भी आवश्यक है।

किन्तु हरिनाम-कीर्त्तनमें स्थानास्थान, कालाकाल या पात्रापात्रका विचार नहीं है। श्रीचैतन्य-भागवत, मध्य-लीलामें कहा गया है—

"खाइते शुइते यथा तथा नाम लय।
देशकाल नियम नाहि, सर्वसिद्धि हय॥"

"कि भोजने, कि शयने, किवा जागरणे।
अहर्निश चिन्त' कृष्ण बल ह बदने॥"

मलमूत्रादि परित्याग करते समय भी श्रीहरिनाम ग्रहण किया जा सकता है। बाहरी स्थूल क्रियाएँ अभ्यास द्वारा ही होती हैं। हरिनाम करनेके लिए कोई बाधा नहीं है। सोते समय, जगते समय या निद्राके समय हम लोग हरिनाम ले सकते हैं। ऊँचे कुल, विद्या, धन सम्पन्न होकर या नीचकुलमें उत्पन्न होकर भी जिस किसी अवस्थामें हरिनाम ग्रहण किया जा सकता है। शूद्र, अन्त्यज, म्लेच्छ, स्त्री-पुरुष, बालक, युवक-युवती, वृद्ध आदि सभी व्यक्ति ही हरिनाम ग्रहणके अधिकारी हैं। निर्जनमें हरिनाम ग्रहण किया जा सकता है, नाना प्रकारके असुविधाओंमें हरिनाम ग्रहण किया जा सकता है, अकेलेमें हरिनाम ग्रहण किया जा सकता है, बहुतसे लोगोंके साथ मिलकर हरिनाम ग्रहण किया जा सकता है, श्रद्धा-पूर्वक या हेलासे (जिस किसी प्रकारसे) हरि-नाम किया जा सकता है।

किन्तु यदि ऐसे सर्वसुलभ हरिनामका कीर्त्तन न कर हम लोग और कुछ करें—दूसरोंको दिखलानेके लिए कपड़ेके भीतर झोली रखकर बाहरमें कपट दीनता, तृणा-दपि सुनीचता या प्रतिष्ठाहीनताका प्रदर्शन करनेकी इच्छा रखें और अन्दरमें दिखावटी वैष्णवता परिपूर्ण मात्रामें हो—कपटता कर, अहं-ममादि बुद्धि लेकर, अवैष्णवको वैष्णव जानकर, वैष्णवको अवैष्णव समझकर, साधु-निन्दादि नामापराध कर, असाधुका अत्यधिक आदर कर, नाम बलपर पापवृत्ति आदि घोरतर अपराधोंके लिए स्थान दें, तो अवश्य ही फल-प्राप्त करनेसे हमें वंचित होना पड़ेगा। अतएव श्रीश्रीमन्महाप्रभुने कहा है—

"नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥"

नामी श्रीभगवानने अहैतुक कृपा परवश होकर अपने असंख्य नामसमूहोंको प्रकट किया है और उन अभिन्न नामसमूहोंमें उनकी सभी प्रकारकी शक्ति अर्पण की है। 'बहुत-संख्या' कहनेसे भगवानके मुख्य और गौण नाम-समूहोंको जानना चाहिए। उनमें माधुर्य-विग्रह श्रीकृष्ण, राधाकान्त, गोपीजनवल्लभ, यशोदानन्दन, नन्दकुमार आदि और ऐश्वर्य-विग्रह वासुदेव, नारायण, नृसिंह, विष्णु आदि ही मुख्य नाम हैं। आंशिक या असम्यक् आविर्भावात्मक 'ब्रह्म', 'परमात्मा', 'ईश्वर' आदि ही भगवानके गौण नाम हैं। भगवानके मुख्य नाम नामीके साथ सम्पूर्ण रूपसे अभिन्न हैं। उनमें सभी शक्तियाँ सम्पूर्णरूपसे अर्पित हैं। परन्तु गौण नामोंमें विविध शक्ति आंशिक या त्रिगुणोंके साथ सम्बन्धयुक्त होकर

वर्त्तमान हैं। जगतके सभी श्रेणीके व्यक्ति ही हरिनाम श्रवण-कीर्त्तनके अधिकारी हैं। श्रील नित्यानन्दप्रभु और ठाकुर श्रीहरिदास-दोनों ही नामाचार्य हैं। श्रीहरिनामसंकीर्त्तन प्रवर्त्तक श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुने कदापि ठाकुर श्रीहरिदाससे यह नहीं कहा—"तुम यवन कुलमें जन्म ग्रहण किये हो, अतएव तुम ब्राह्मणोंके घर जाकर ब्राह्मणोंका कार्य हरि-नाम न करो।" उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीहरिदासको कहा—"तुम दोनों ही समान रूपसे जाकर जगत जीवोंके द्वार-द्वारपर प्रेम-प्रचार करना।" पूर्वविधिके अनुसार यदि कोई ब्राह्मण ब्राह्मणेतर—जातिके साथ व्यवहार करे, तो ब्राह्मणतासे पतित हो जाते हैं। किन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभु इस जगत्में उपाध्याय-कुलमें आविर्भूत होकर भी निखिल पतितोंको पवित्र करनेवाले हैं। क्षत्रिय, वैश्य-नवशाख या सुवर्णवणिक् आदि विभिन्न जातीय कुलोद्भूत व्यक्तियोंको हरिनाम प्रदान करनेपर भी पतितपावन श्रील नित्यानन्द प्रभु पतित नहीं हुए।

नित्यानन्द प्रभुने कदापि उदरभरण या अर्थादि लोभके वशीभूत होकर किसीको भी नामापराध प्रदान नहीं किया। वे ही चैतन्य-रस विग्रह शुद्ध हरिनाम वितरण कर सकते हैं। अतएव वे पतितपावन या जीवोद्धारण हैं। जो व्यक्ति 'अहं--मम' भाव लेकर अर्थादि के लोभसे हरिनाम प्रदान करनेके बदलेमें 'नामापराध' प्रदान करते हैं, वे नीचजातिके सङ्गद्वारा पतित होते हैं। श्रील हरिदास ठाकुर भी आचार्य कार्य करनेके सर्वथा उपयुक्त पात्र थे।

श्रीश्रीमन्महाप्रभुने श्रीहरिदास ठाकुरको नामाचार्य रूपसे प्रतिष्ठित कर सभी जीवोंको यह शिक्षा दी है कि आभिजात्य या सामाजिक मर्यादाके साथ पारमार्थिक ऊँच—नीच भावका सम्बन्ध नहीं है। पारमार्थिक व्यक्ति ही यथार्थ आभिजात्यसम्पन्न ब्राह्मणोत्तम हैं और अपारमार्थिककी सामाजिक मर्यादा—छलाभिजात्य मात्र है। वह हरिनाम ग्रहणके लिए प्रतिबन्धक या बाधास्वरूप है। श्रीमद्-भागवत्के १।८।१६ श्लोकमें और श्रील कृष्ण-दास कविराज गोस्वामी प्रभुके श्रीचैतन्य चरितामृतके अन्त्य खण्ड, ४र्थ परिच्छेदमें यही बात कही गई है—

"जन्मैश्वर्य-श्रुत-श्रीभिरेधमान-मदः पुमान्।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चन गोचरम्॥"

"दोनेरे अधिक दया करेन् भगवान्।
कुलीन-पण्डित धनीर बड़ अभिमान्॥
जेइ भजे सेइ बड़, अभक्त-हीन छार।
कृष्णभजने नाहि जाति-कुलादि विचार॥"

'शौक्र ब्राह्मणेतर जातिके मुखसे हरि-नाम श्रवण करना नहीं चाहिए—नीच कुलो-

त्पन्न व्यक्तिको हरिनाम कीर्त्तन करनेका अधिकार नहीं है'—ऐसी बातका श्रीमन्महाप्रभुने कदापि समर्थन नहीं किया। श्रील हरिदास ठाकुरके दास—कुलीनग्रामवासी वसु-रामानन्द आदि विशेष मर्यादायुक्त कुलमें आविर्भूत हुए थे और श्रील नित्यानन्द प्रभुने सुवर्ण-वणिक् कुलमें अवतीर्ण श्रील उद्धारण ठाकुरको ग्रहण किया।

प्रपञ्चमें जिस कुलमें महाभागवत अवतीर्ण होते हैं, उस कुलके पूर्वपुरुष—'एक सौ पीढ़ी' तक उन्नत होते हैं, मध्यम भागवत आविर्भूत होनेसे 'चौदह पीढ़ी'तक उन्नत होते हैं और कनिष्ठ भागवत आविर्भूत होनेपर 'तीन पुरुष' तक उन्नत होते हैं। वैष्णव कदापि कर्मफलद्वारा बाध्य नहीं हैं। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' आदि विधि भगवान्के भक्तोंके लिए प्रयोग नहीं किये जा सकते। कई समय जीवोंको पापोंसे कुष्ठरोगीके घरमें कुष्टरोगग्रस्त होकर जन्म ग्रहण करना पड़ता है। अथवा पुण्यफलसे ब्राह्मण-कुलमें जन्म प्राप्त कर कदापि श्रीमान या अच्छे कुलमें योगभ्रष्ट होकर कर्मफलवशतः जीव जन्म ग्रहण करते हैं। ये सभी पूर्वकर्मोंके फल हैं—कर्ममार्गकी बातें हैं। किन्तु वैष्णवों के लिए ऐसा नहीं है। श्रील रूप गोस्वामीपाद ने कहा है—

"यद्ब्रह्मसाक्षात्कृतिनिष्ठयापि
विनाशमायाति विना न भोगैः।
प्रपैति नामस्फुरणेन तत्तो
प्रारब्धकर्मेति विरौति वेदः॥"

(नामाष्टक ४र्थ श्लोक)

अविच्छिन्न तैलधाराकी तरह ब्रह्मचिन्ता द्वारा भी फलभोगको छोड़कर जो सभी प्रारब्ध कर्म या पाप-पुण्यके फलाफल नष्ट नहीं होते, श्रीनामकी स्फूर्तिमात्रसे ही वे सभी फल सम्पूर्ण रूपसे दूर होजाते हैं—यही बात ही वेदोंके द्वारा उच्च स्वरमें कीर्त्तित हुई है।

तब जो प्रपञ्चमें देखा जाता है कि भगत्भक्त नीचकुलमें आविर्भूत होते हैं, प्रापञ्चिक नेत्रोंमें 'मूर्ख', 'रोगग्रस्त' के रूपमें प्रतीत होते हैं, उसमें महान् उद्देश्य होता है। साधारण लोग यदि देख पायें कि भगवद्भक्त केवल ऊँचे कुलमें ही आविर्भूत होते हैं, बलिष्ठ या जड़विद्याके पण्डित रूपसे विराजित रहते हैं, तो वे निरुत्साहित हो जायेंगे। अतएव भगवान् श्रीगौर-कृष्ण सभी व्यक्तियोंका नित्य मंगल करनेके लिए विभिन्न श्रेणीके लोगोंमें अपने भक्तोंको आविर्भूत कराकर अन्यान्य दीन अयोग्य जीवोंके प्रति परम दया प्रकाश करते हैं। उनको यह क्रिया—पालिता शिक्षिता हस्तिनी प्रेरणा कर घेरेके भीतर वन्य हाथीको पकड़नेकी व्यवस्थाकी तरह है। श्रील वृन्दावनदास ठाकुरने भी कहा है—

"शोच्य-देशे, शोच्य-कुले आपन-समान।
जन्माइया वैष्णव, सबारे करेन त्राण॥
जेइ देशे, जेइ कुले वैष्णव अवतरे'।
ताँहार प्रभावे लक्ष योजन निस्तरे॥"

"जेत देख वैष्णवेर व्यवहार दुःख।
निश्चय जानिह-सेइ परानन्द सुख॥
विषय मदान्ध सब किछुइ ना जाने।
विद्या-धन-कुल-मदे वैष्णव ना चिने॥"

(चैतन्य भागवत आदि २य अ०, मध्य ९ म अ०)

भगवद्भक्त नीचकुलमें अवतीर्ण होनेके कारण यह नहीं सोचना चाहिए कि 'इस व्यक्तिने पापयोनि प्राप्त की है','कर्मकलबाध्य होकर नीच-शूद्र म्लेच्छादि कुलमें जन्म ग्रहण किया है'; परन्तु यह जानना चाहिए कि उन्होंने नीचकुलको पवित्र किया है। हम लोग बात करते करते पूछ बैठते हैं—'आपने किस कुलको पवित्र किया है ?' यदि कोई महापुरुष ने कलियुगके एकमात्र साधन-प्रणाली रूप श्रीनामकीर्त्तनके द्वारा सिद्धि प्राप्त की है, तो वे निश्चय ही श्रेष्ठ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

कृष्णनामकी महिमा

अलमलमियेव प्राणिनां पातकानां
निरसने विषये या कृष्ण-कृष्णेति वाणी।
यदि भवतिमुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा
विलुठति चरणाब्जे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः॥

श्री सर्वज्ञ नामक भक्त कहते हैं—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! यह सम्बोधनरूप वाणी ही प्राणीमात्रके सम्पूर्ण पातकसमूहोंका नाश करनेमें समर्थ है। यदि मुक्तिदाता श्री-मुकुन्द भगवान्‌के श्रीचरणोंमें सान्द्रानन्द्र प्रदायिनी प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रादुर्भाव हो गया हो, तब तो ऐसे भक्तराजके चरणोंमें "मुझको स्वीकार करो मुझको स्वीकार करो"—इस प्रकार पुकारती हुई मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मी लोट-पोट हो जाती है।

(पद्यावलीसे संग्रहीत)

प्रश्नोत्तर

(ज्ञान)

१—ज्ञानका क्या स्वरूप है ?

"ज्ञान भी सात्त्विक कर्मविशेष है।"

—गी० र० र० भा० ३।२

२—किस प्रकारके ज्ञान-वैराग्य भक्तके लिए स्वीकार करने योग्य हैं ?

"शुष्क ज्ञान-वैराग्य भक्तिके अङ्गमें परिगणित नहीं है। क्योंकि वे चित्तको कठिनता उत्पन्न करते हैं। किन्तु भक्ति सुकुमार स्वभावा हैं। अतएव केवल भक्तिसे उत्पन्न जो ज्ञान और वैराग्य हैं, वे ही स्वीकार करने योग्य हैं।"

—जै० ध० २० वाँ अ०

३—जिज्ञासा रहनेतक शुद्ध ज्ञानकी क्या अवस्था होती है ?

"सभी भौतिक ज्ञानको एकत्र करनेपर जो ज्ञान पाया जा सकता है, उसे 'प्राकृत-ज्ञान' कहा जा सकता है। उस प्राकृत ज्ञानके अविकृत मूल्य-ज्ञान को 'अप्राकृत-ज्ञान' कहा जा सकता है। विकृत अवस्थामें अप्राकृत ज्ञान ही प्राकृत ज्ञान है। सांख्यके चौबीस तत्त्व—सभी ही प्राकृत ज्ञान के भीतर हैं। वह ज्ञान समाधियोगमें विलुप्त होकर अविकृत ज्ञानको उदय कराता है। उस ज्ञानका नाम ही 'विज्ञान' है। जब तक जिज्ञासा रहे, तब तक अविद्याका बल रहता है। अविद्या-निवृत्तिके साथ विज्ञानरूप चित्ज्ञानका उदय होता है। इतना ज्ञान प्राप्त कर आस्वादन कालमें भक्तिका उदय होता है। अतएव जो यथार्थ ज्ञान है, वही भक्ति है।"

—'समालोचना' स० तो० ११।१०

४—वैष्णव लोग किस ज्ञानकी निन्दा करते हैं ?

"वैष्णव महात्मा लोग स्थान-स्थानमें जिस ज्ञानकी निन्दा करते हैं, वह शुद्धज्ञान नहीं है। जिस स्थानमें जड़ीय ज्ञानके द्वारा अचिन्त्य परमार्थका विचार करनेकी अयथा चेष्टा हो, वहीं ज्ञानकी निन्दा है। एक चोर व्यक्तिको लक्ष्य कर यदि उसे 'धूर्त्त' कहा जाय, तो मनुष्य-मात्र ही धूर्त्त नहीं हुए, केवल चोरको ही 'धूर्त्त' कहा जा सकता है।"

—'समालोचना' स० तो० ११।१०

५—भक्ति शास्त्रोंमें किस ज्ञानकी निन्दा करते हैं ?

"भाव-भक्ति और शुद्ध-ज्ञानकी ऐक्य-विवेचना द्वारा ही सभी अशुद्ध ज्ञानको 'ज्ञान'

कहकर 'ज्ञान'की निन्दा सुनी जाती है। शुद्धज्ञानको ज्ञान-काण्ड कहा नहीं जा सकता।"

—चै० शि० ५।३

६—प्रत्येक और पराक् चैतन्य किसे कहते हैं ?

"चैतन्य दो प्रकारके हैं—प्रत्येक चैतन्य और पराक् चैतन्य। जब वैष्णवोंको प्रेमावेश होता है, उस समय जो भाव उदित हो, वही प्रत्येक चैतन्य अर्थात् अन्तरस्थ ज्ञान है। जिस समय पुनः प्रेमावेश भङ्ग होता है, तब जड़जगतके प्रति दृष्टि पड़ती है, और पराक् चैतन्यका उदय होता है। पराक् चैतन्यको 'चित्' कहा नहीं जा सकता, किन्तु वह 'चिदाभास' कहा जाता है।"

—प्रे० प्र० ६ म प्र०

७—भगवानकी लीला क्या मनुष्य-ज्ञान द्वारा जानी जा सकती है ?

"मानव ज्ञान अत्यन्त क्षुद्र है। उस ज्ञान से परमेश्वरकी शक्ति और लीलाको मापनेकी चेष्टा करनेपर अत्यन्त भ्रममें पड़ना होता है।"

—'समालोचना' ससङ्गिनी स० तो० ८।४

८—ब्रह्मज्ञान और ईश्वरज्ञानमें विशेष भेद क्या है ?

"ब्रह्म-ज्ञान ईश्वर-ज्ञानको ही एक उपशाखा विशेष है।"

—चै० शि० ५।३

९—कैवल्य और ब्रह्मनिर्वाण-मुक्तिकी कहाँ अवस्थिति है ?

" 'कैवल्य' और 'ब्रह्मलय' मायिक जगत् और चिज्जगत्के बीचकी सीमा स्वरूप हैं।"

—ब्र० स० ५।३४

१०—ज्ञान काण्डीय गति कैसी होती है ?

"द्वितीय सङ्गतिमें (स्वार्थ विनाशरूप निर्विशेष ज्ञानसङ्गतिमें) जो लोग आबद्ध हो पड़ते हैं, वे आत्मनाशको उद्देश्य कर फल्गुवैराग्य आचरण करते हैं। उनकी न तो इस जगत्में प्रतिष्ठा हुई, और न पश्चात् किसी सिद्धतत्त्वकी प्राप्ति हुई। परन्तु कुछ व्यतिरेक या विपरीत चिन्ताको लेकर ही उनका जीवन वृथा ही नष्ट हो जाता है। इन्हें ही 'ज्ञान-काण्डी' कहते हैं।"

—चै० शि० ८, उपसंहार

११—ज्ञान-योग मार्गसे गोलोक-गमन चेष्टामें क्या आपत्ति है ?

"कृष्णप्रसादको छोड़ कर जो लोग केवल चिन्ताके द्वारा ही गोलोकमें गमन करनेकी चेष्टा करते हैं, उन्हें बाधा देनेके लिए दसों दिशाओंमें दस प्रकारके नैराश्य (निराशता) रूप शूल वर्त्तमान हैं। योगमार्ग

या ज्ञानमार्गमें आने आकर उन दस शूलों-द्वारा विद्ध होकर दांभिक व्यक्ति पराजित हो जाते हैं।"

—ब्र० स० ५।५

१२—सुर (देवता) और असुर (राक्षस) कौन हैं ? उनके उपाय और उपेयमें पार्थक्य है क्या ?

"भगवानके भक्त लोग ही साधु या सुर हैं और भगवान्‌के विद्वेषी व्यक्ति लोग ही असुर हैं। साधुत्व (सुरत्व) और असुरत्वमें जिस प्रकार सर्वदा ही परस्पर वैपरीत्य या विपरीत धर्म वर्त्तमान है, उनके साधन और साध्य विषयमें भी उसी प्रकारका विपरीत-भाव अवश्य ही रहेगा। असुरोंके लिए साधु-विद्वेष और गौ-ब्राह्मण-वैष्णव हिंसा या हत्या ही साधन और मोक्ष ही साध्य है। भक्तोंके लिए भक्ति ही साधन और प्रेम ही साध्य है। जो व्यक्ति उस मोक्षके प्रयासी हैं, वे लोग असाधुओंकी तरह केवल ज्ञान-चेष्टा रूप असाधु साधनका आश्रय लेते हैं।"

—वृ० भा० तात्पर्यानुवाद

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

ज्ञानकी अप्रयोजनीयता

ध्यानातीतं किमपि परमं ये तु जानन्ति तत्त्वं,
तेषामास्तां हृदयकुहरे शुद्ध चिन्मात्र आत्मा।
अस्माकं तु प्रकृतिमधुरः स्मेरवक्त्रारविन्दो,
मेघश्यामः कनक-परिधिः पङ्कजाक्षोऽयमात्मा ॥

श्रीकविरत्नजी नामक भक्त कहते हैं—जो ज्ञानी महात्मा लोग ध्यानातीत, निर्विशेष किसी परम तत्त्वको जानते हैं, उनके हृदय-गुफामें शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा यदि उपस्थित होता है, तो भले ही हो जाय; किन्तु हमारे हृदयप्रांगणमें तो स्वभावतः मधुर, ईषद् हास्ययुक्त मुखारविन्दवाले, नवीन जलधर श्याम शरीर-वाले, सुवर्णमय पीताम्बरधारी कमलनयन, कोई ऐसे अपूर्व नवकिशोर परम पुरुष गोपगोपियोंके साथ खेलते रहें।

(पद्यावलीसे संग्रहीत)

सन्दर्भ-सार

(भक्ति-सन्दर्भ—५)

अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ।।

(श्रीमद्भा० १।२।२२)

अब इस प्रकरणके उद्देश्यमे साधुजनोंके आचारका उल्लेख करते हुए आलोच्य विषय-के उपसंहारमें कहते हैं कि पूर्वोक्त कारण-वशतः अप्राकृत कविवृन्द परम आनन्दपूर्वक साधक और सिद्ध उभय दशाओंमें ही भगवान वासुदेव के प्रति प्रेम-भक्ति करते हैं, जिससे आत्म-प्रसादको प्राप्ति होती है। 'आत्म-प्रसादनी' का अर्थ है—मनको शोधन करने-वाली। अशुद्ध मन कृष्णेतर-प्रतीतिके कारण संसार-भोग करता है । परन्तु हरिसेवाद्वारा मनकी शुद्धि होती है। 'परमया मुदा' अर्थात् 'परम सुखपूर्वक'—इस कथनके द्वारा साधन कालमें या सिद्धि कालमें – दोनों ही अवस्थाओंमें कर्मानुष्ठानकी भाँति भक्ति-अनुष्ठानमें दुःख तो नहीं है; परन्तु उसके विपरीत केवल सुख ही सुख है।

मायाबद्ध अशुचित् जीव भगवानकी तटस्था शक्तिका परिणाम होनेके कारण स्थूल और सूक्ष्म आवरण मायाकृत) को ही 'मैं' माननेका भ्रम करता है। यह भ्रान्ति ही विवर्त्तवाद है। विवर्त्तवादी अपनेको कभी पापिष्ठ और अन्याभिलाषी, कभी पुण्यकर्मी एवं कभी उन्मत्त और अहंग्रहोपासक जानकर हरिविमुखताको ही प्रज्ञा मान लेते हैं। उस समय उनकी भगवत्सेवा-प्रवृत्ति सुप्त रहती है। स्थूल-सूक्ष्म देहाभिमानी जीव कर्म फलसे बँध कर त्याग और भोग—इन दोनों अनित्य कर्मोंके जाल में फँस जाते हैं। वही वासना त्रिगुणा-श्रित जीवको पथभ्रष्ट कर त्रिगुणमयी मायाके राज्यमें नासिका-बिद्ध कोल्हूके बैलकी भाँति घुमाती रहती है। आवरणी और विक्षेपा-त्मिका शक्तिके जालमें फँस कर जीव अपने स्वरूपको भूल कर कर्मचक्रके चौरासी लाख योनियोंमें भटकने लगता है। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग और मनुष्य आदि नानाप्रकारके देहोंको प्राप्त कर त्रिविध प्रकारके तापोंसे दग्ध होता है। साथ ही उन तापोंसे छुटकारा पानेके लिए अनेक प्रकारकी चेष्टा और साधन भी करता है । इस मायिक भोगमें एक ओर कुछ नश्वर आनन्द है तथा दूसरी ओर भीषण क्लेश भी है। भगवद्भक्तिके बिना कर्मादि चेष्टाओंसे यथार्थ आनन्दकी प्राप्ति कदापि

संभव नहीं। दूसरे देवताओंकी तो बात ही क्या, गुणावतार—ब्रह्मा और शिवकी आराधना भी तुच्छ है—

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृते र्गुणा-
स्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः॥
भा० १।२।२३

पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः।
तमसस्तु रजस्तस्मात् सत्त्वं यद् ब्रह्मदर्शनम्॥
(भा० १।२।२४)

विष्णुभिन्न अन्यान्य देवताओंकी उपासना कर्ममार्गके अन्तर्गत है। दूसरे देवताओंकी तो बात ही क्या, गुणावतार ब्रह्मा और शिव भी परब्रह्म नहीं हैं और क्रमशः रजोगुण और तमोगुणके पोष्टा होनेके कारण कल्याणकामी व्यक्तियोंको उनकी उपासना नहीं करनी चाहिए।

सत्त्व, रज और तम—ये प्रकृतिके तीन गुण हैं। इनको स्वीकार करके इस संसार की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके लिए एक ही परम पुरुष—हरि, ब्रह्मा और हर—ये तीन नाम ग्रहण करते हैं। फिर भी मनुष्योंका कल्याण तो सत्त्वगुण स्वीकार करनेवाले श्रीहरिसे ही होता है।

जैसे जड़ काष्ठ (लकड़ी) से धूँआ श्रेष्ठ है और उससे भी श्रेष्ठ है अग्नि—क्योंकि वेदोक्त यज्ञ-यागादिके द्वारा अग्नि सद्गति देनेवाला है—वैसे ही तमोगुणसे रजोगुण श्रेष्ठ है और रजोगुणसे भी सत्त्वगुण श्रेष्ठ है; क्योंकि भगवानका दर्शन करानेवाला है। यहाँ लकड़ी तमका, धूआँ रजका तथा अग्नि सत्त्वगुणका उपमास्थल है।

दूसरे देवताओंकी उपासना छोड़कर साधुजन भगवद्भक्ति ही करते हैं। श्रीमद्भागवतमें देखिए—

भेजिरे मुनयोऽग्राह्यं भगवन्तमधोक्षजम्।
सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनुमानिह॥
(भा० १।२।२५)

इसीलिए प्राचीन कालमें महात्मालोग अपने कल्याणके लिए विशुद्धसत्त्व अधोक्षज भगवानका भजन किया करते थे। अब भी जो लोग उनका अनुसरण करते हैं, वे उन्हींके समान भजन करके कल्याणभाजन होते हैं।

कृष्ण-दास्य ही जीवका स्वरूप है। शुद्ध-जीव चिन्मय-इन्द्रियोंके द्वारा प्रकृतिके अतीत-अप्राकृत हृषिकेशकी सेवा करते हैं। हरि-विमुख जीव भगवद्भजनसे उदासीन रह कर विवर्तवादका आश्रय ले मायिक स्थूल-सूक्ष्म शरीरोंको ही 'मैं' मानते हैं। बद्धजीव दुखोंसे छुटकारा प्राप्त करने तथा सुखी होनेके लिये कर्ममार्गमें प्रवृत्त होते हैं। विष्णुको कर्मयज्ञों का अधिपति—यज्ञेश्वर मानकर भी उनकी उपासना छोड़ कर विभिन्न प्रकारकी सांसारिक कामना-वासनाओंकी पूर्तिके लिए दूसरे-दूसरे देवताओंकी आराधना किया करते हैं।

मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ।
नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः॥
(श्रीमद्भा० १।२।२६)

पञ्चरात्रके मतानुसार सकाम उपासकगण अन्यान्य देवताओंकी उपासना करते हैं; परन्तु जो लोग इस संसारसागरसे पार जाना चाहते हैं, वे यद्यपि किसीकी निन्दा तो नहीं करते, न किसीमें दोष ही देखते हैं, फिर भी घोर रूपवाले—तमोगुणी—रजोगुणी भैरवादि भूत-पतियोंकी उपासना न करके प्रशान्त मूर्ति नारायण की ही उपासना करते हैं।

धर्मकामी व्यक्ति सूर्यकी उपासना करते हैं, अर्थकामी गणेशकी उपासना करते हैं, कामकी इच्छावाले मायादेवीकी उपासना करते हैं; मोक्ष चाहनेवाले शिवकी उपासना करते हैं तथा कामनारहित व्यक्ति कामदेव विष्णुकी उपासना करते हैं। बद्धजीव साधारणतः कामनाशून्य न होनेके कारण विष्णुकी उपासना न करके दूसरे-दूसरे देवताओंकी ही उपासना करते हैं। यदि सौभाग्य वश वे विष्णुके चरणारविन्दोंमें शरणागत हों, तो उनकी सम्पूर्ण सांसारिक भोगवासनाएँ दूर हो जाती हैं।

कृष्ण भक्त निष्काम अतएव शान्त।
भुक्ति मुक्ति सिद्धिकामी सकलेइ अशान्त॥

(श्रीचैतन्य-चरितामृत)

नारायणके भजनसे ही यदि कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, तब अन्यान्य देवताओंके भजनकी आवश्यकता ही क्या है? उसका उत्तर इस श्लोकमें दिया गया है—

रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै।
पितृभूत प्रजेशावीन् श्रियैश्वर्य प्रजेप्सवः॥

(श्रीमद्भा० १।२।२१)

रजोगुणी और तमोगुणी जीव धन, ऐश्वर्य और संतान आदिकी कामनासे भूत, पितर और प्रजापतियोंकी उपासना करते हैं, क्योंकि इन लोगोंका स्वभाव उन (भूतादि) से मिलता-जुलता है। सात्वतसंहिताका कथन है कि सत्त्वरजोमिश्र व्यक्ति सूर्यकी, सत्त्वतमोगुणमिश्र व्यक्ति गणेशको, रजस्तमः स्वभावसम्पन्न व्यक्ति मायाशक्ति को तथा तमोगुण स्वभाववाले रुद्रकी उपासना करते हैं। विशुद्ध सत्त्वगुणी व्यक्ति अनर्थमुक्त निर्मल निर्गुणताका आश्रय करके अप्राकृत कामदेव कृष्णकी उपासना करते हैं।

जो लोग विष्णु-प्रीतिकी कामनाको छोड़कर कर्मकाण्डका अनुष्ठान करते हैं, उनकी पूजा भूत-पूजा होती है। जो लोग पितृगणको प्राकृत स्थूल-शरीरका कारणरूपी जनक मानते हैं—जो प्रत्यक्ष ज्ञानके पक्षपाती होते हैं और अक्षजप्रतीतिका भोक्ता बन कर कर्मफलका भोग करते हैं, वे ही पितृगणोंके उपासक हैं। विष्णुभक्तजन विष्णुके प्रसादसे पितृ पुरुषों या अन्याय देवताओंकी पूजा करते हैं। श्री नारायणकी पूजा होनेसे समस्त देवताओं एवं पितृगणोंकी पूजा हो जाती है। कोई भी व्यक्ति अपने पिताको विष्णु-प्रसाद देकर उसका श्राद्ध कर सकता है। दूसरे-दूसरे

देवताओंके उपासक भी विष्णुनैवेद्यके द्वारा उन-उन देवताओंकी पूजा कर सकते हैं। जो दूसरे देवताओंको या पितृगणोंको स्वयं स्वतन्त्र उपास्य तत्त्व मानते हैं—उन्हें विष्णु के अधीन नहीं मानते, वे तत्त्वानभिज्ञ और स्थूल बुद्धिवाले होते हैं। सम्पूर्ण शास्त्रोंका मूल तात्पर्य है--भगवान वासुदेवकी आराधना—

वासुदेवपरावेदा वासुदेवपरामखाः ।
वासुदेवपरायोगा वासुदेवपरा क्रियाः ॥
वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ।
वासुदेवपरोधर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥

(भा० १।२।२८)

वेदोंका तात्पर्य वासुदेव (श्रीकृष्ण) की आराधनामें ही है। यज्ञोंके उद्देश्य वासुदेव ही हैं। योग आदि क्रियायें वासुदेवकी प्राप्ति के लिए ही की जाती हैं और समस्त कर्मोंकी परिसमाप्ति भी वासुदेवमें ही है। समस्त ज्ञानशास्त्र वासुदेवकी सेवातात्पर्यमय हैं। तपस्या वासुदेवकी प्रसन्नताके लिए ही की जाती है। समस्त धर्मशास्त्र वासुदेवको ही उद्देश्य करते हैं, तथा समस्त फलभोग वासुदेवमें ही प्रतिष्ठित है। वासुदेव ही चरम गति हैं।

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ।
सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥

(भा० १।२।२९)

जगतकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि जिन लीलामय भगवान्से होती है, उन वासुदेवमें ही समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य देखा जाता है।

ब्रह्मवादियोंके मतानुसार प्रकृतिद्वारा ही जगतकी उत्पत्ति होती है। किन्तु यथार्थ सिद्धान्तके अनुसार प्रकृतिको अजागलस्तन (बकरीके गलेमें लटकते हुए स्तन जैसा) माना गया है। ब्रह्मसूत्रके उत्पत्त्यसंभवाधिकरणमें प्रकृतिद्वारा सृष्टिकार्य असंभव है—ऐसा सिद्धान्त माना गया है। कारणार्णवशायी महाविष्णु ही ब्रह्माण्डके कारण हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिसुदेव श्रौती महाराज

व्रज-सुषमा श्रीयमुनाजी

यमुना नदीका अपना एक विलक्षण महत्व है। यह भारतवर्षकी प्रमुख नदियोंमें तो अपना विशिष्ट स्थान रखती ही है, साथ ही प्रयागराजको तीर्थोंका राजत्व प्रदान करने, मथुरामें यमपर शासन करने तथा स्वयं भगवान व्रजेन्द्रनंदन श्रीकृष्णकी क्रीड़ास्थली होनेके कारण इसकी पूज्यता और भी बढ़ी-चढ़ी है।

भौतिक रूप—यमुना नामकी कई नदियाँ हैं।

१- एक यमुना आसाम प्रदेशमें प्रवाहित होती है। इसका मुख्य क्षेत्र नागापहाड़का उत्तरांश है।

२- यमुना—उत्तरब्रह्मकी एक नदी है।

३- 'यमुना' को इच्छामती नदीकी शाखाके रूपमें २४ परगना, नदिया (पश्चिम बङ्गाल) में अभिहित किया जाता है।

४- 'यमुना' वर्षाकालमें प्रवाहित होने वाली नदी है। इसका दूसरा नाम 'दात्तकोपा' भी है।

५- किन्तु सर्वप्रसिद्ध यमुना नदी यमुनोत्तरी शृंग (गढवाल राज्य) से प्रवाहित होती है। यह स्थान गढवाल राज्यसे ५ माइल उत्तर तथा पाँचबाँदर शृंगसे २०७३१ फीट उत्तर-पश्चिममें गिरकर ६५ माइल पर्यन्त पर्वतोंपर क्रीड़ा करती हुई समतल प्रदेशमें प्रवाहित होती है। समतल प्रदेशमें सहारनपुर-अम्बाला, करनाल, मुजफ्फरनगर आदि क्षेत्रोंमें अपनी गरिमाका ध्वज गाड़कर दिल्लीसे ८० माइल दक्षिणाभिमुख दिल्ली प्रदेश और वहाँ से १०० मील दक्षिण मथुरा जनपदमें घूमती हुई पुनः पूर्वाभिमुख इटावा नगर, हमीरपुर होकर इलाहाबादमें गंगाकी धारका आलिंगन कर अन्तमें समुद्रके गर्भमें प्रविष्ट होती है। वहाँ भी अपनी चमत्कृतिसे समुद्र यात्रियोंको विशेष श्रद्धापात्री बनकर आगे बढ़कर लोकालोक[1] पर्वतसे देवनगरोंमें उछलकर गोलोकमें पुनः प्रविष्ट हो जाती है।

व्युत्पत्ति प्रकार—

१- व्याकरणकी दृष्टिसे यमुना शब्द यमि

---

१. गर्ग संहिता, वृन्दावन खण्ड, अध्याय ४

धातुसे उणादि उनन् प्रत्ययद्वारा सिद्ध होता है, टाप् प्रत्यय स्त्रीत्वका बोध कराता है।

२- 'यच्छति विरमति गङ्गायामिति यमुना' यह व्युत्पत्ति गङ्गामें विरामके महत्वकी प्रतिपादिका है।

३- देवी भागवतकारने यमकी भगिनी होनेके कारण 'यमुना' शब्द सिद्ध किया है[१]।

४- प्रसिद्ध कोशकार अमरसिंहने यमुनाके पर्यायवाची शब्दोंमें कालिन्दी, सूर्यतनया, शमनस्वसाके उल्लेख किये हैं[२]। शब्द-रत्नावली नामक कोशमें कलिन्दशैलजा, तपनतनूजा, यमस्वसा, श्यामा, तापी, यमनी, यमीका उल्लेख भी उपलब्ध होता है।

इसके अतिरिक्त आयुर्वेद शास्त्रमें यमुनाके जल पित्त-दाह, वमन एवं श्रमका नाशक माना है। यह स्वादु है, वातजनक, पावन, अग्नि-दीपक, रोचक, बलप्रद एवं मधुर भी है[३]।

शास्त्रीय स्वरूप—

वैदिक साहित्यमें यमुना—

विश्वके सर्वप्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदमें यमुनाका स्पष्ट उल्लेख है[४]। इस मन्त्रके द्वारा कलशमें तीर्थोंके आवाहनका क्रम गृह्य सूत्रोंने निर्दिष्ट किया। इसी वेदमें यम और यमीके भाई-बहिन सम्बन्धका भी उल्लेख है[५]। अथर्ववेदमें यमुना शब्दका स्पष्ट उल्लेख न होते हुए भी यमि[६], यमिनि[७], यमिनी[८], यमी[९] के उल्लेख उपलब्ध हैं। यजुर्वेदकी वाजसनेयी शाखामें यमी शब्द पृथिवीका वाचक भी लिखा है।

---

१. यमस्य भगिनी जाता यमुना तेन सा मता।
[देवी भागवत प० ४५]

२. अमरकोश १।१०।३२—यच्छतीति यमुना।

३. राजनिर्घण्टु

४. ऋग्वेद [१०।७५।५-१४] "इमं मे गङ्गे यमुने"

५. ,, १०।१०।१-१४

६. अथर्ववेद १८।१।१३-१६

७. ,, ३।२८।४

८. ,, ३।२८।१,५,६

९. ,, १८।१।१०

वेदमें यमने यमसे आलिंगनका प्रस्ताव किया । यमने उसके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया और भारतीय पवित्र भ्रातृ स्नेहकी भावनाका परिष्कार भी किया। यमीका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भी उपलब्ध है१; विभिन्न कथानक इसके सम्बन्ध में लिखे गये हैं।

वैदिक धाराके यम-यमीका सम्बन्ध पुराणोंमें विशालतम रूप धारण कर गया, आगे यही यमुना और यमराजके कथानकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए।

पुराणोंमें यमुनाका वर्णन

यमुना जन्म-कथा—

यमुना यमकी भगिनी है। सावर्णि मनु ने सुमेरु पर्वतपर घोर तपस्या की थी। उसके शनैश्चर नामक पुत्र तथा यमुना नामक कन्या उत्पन्न हुई थी। यम भी इन्हींसे उत्पन्न हुआ था२।

इसकी द्वितीय कथा यह है--'सूर्यकी संज्ञा नामक एक स्त्री थी, वह सूर्यका तेज सहनेमें बड़े कष्टका सामना करती थी। एक दिन उसने अपने पिता त्वष्टासे सब वृत्तान्त सुनाया। त्वष्टाने सूर्यको दिव्य चाकपर बिठाकर उसको गोल बना दिया और तेज भी कम कर दिया। संज्ञा उसके सामने पहुँची; किन्तु तेज सहन न कर सकी, शीघ्र ही घोड़ी बन गई। सूर्यने उसका पीछा किया और उसे शाप दिया कि तेरेसे एक नदीका जन्म होगा। फलतः संज्ञाने यमुनाको जन्म दिया।३

मत्स्यपुराण में यम-यमुनाके उत्पन्न होने-का वृतान्त वर्णित है।४

ब्रह्मपुराणमें काली नागदमन एवं यमुनाके आकर्षणकी कथा उपलब्ध है५। पद्मपुराणमें कालिन्दीका माहात्म्य भी वर्णित है६। विष्णुपुराणमें भी कालिन्दीका वर्णन है७। नारद पुराणमें

---

१. [क] शतपथ ब्राह्मण १। २। १। १०
[ख] पंचविंश ब्राह्मण ११। १०। २३

२. वन्हिपुराण सागरो०

३. "तस्माद्विलोल तनयां नदीं त्वं प्रसविष्यसि" —मार्कण्डेयपुराण [११। ५-७]

४. "यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः" —मत्स्यपुराण अध्याय ११। ३

५. ब्रह्मपुराण—अध्याय ७८, ८८

६. पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, १९५ अध्याय

७. विष्णु पुराण, ५ अंश, ७ अ०

वृन्दावन माहात्म्यका वर्णन है एवं कालिन्दी का भी उल्लेख है।[१] भविष्य पुराणमें यमुना और तपतीके कलहका भी वर्णन है, तपती के शापसे यमुना नदी रूप बनी।[२]

ब्रह्मवैवर्त पुराणमें विरजाके साथ भगवान्के, विहारका वर्णन है एवं कालिय दमन प्रसंगमें यमुनाका वर्णन है[३]।

बाराह पुराणमें सरस्वती-यमुनाके संगमके वर्णनका भव्य निरूपण है। वैष्णव खण्डमें कार्तिक माहात्म्यमें इसके अनेक उल्लेख हैं।

श्रीमद्भागवतमें भगवान् नन्दनन्दनकी लीलास्थली यमुनातट ही रही थी[४]। यमुना जीने अपनी शक्तिसे अक्रूरको अपने हृदय में विराजित श्रीकृष्णके दर्शन कराये थे।

गर्ग संहितामें यमुना पंचाङ्ग वर्णित है। इसमें यमुनाजीके सहस्रनाम, कवच, पटल, पद्धति आदि भी वर्णित हैं[५]। विरजा-यमुना के शापका वर्णन भी बड़े विस्तारसे लिखा गया है।

यमुना श्याम वर्णा है?[६]

दक्ष यज्ञमें शिवजीके अपमानको देखकर सती जब दग्ध हो गई, तो कामदेवने शिवजीको एकाकी जानकर अपना प्रहार किया। शिव विह्वल होकर यमुनामें गिर पड़े थे। उनके चापके तेजसे यमुनाका जल श्याम हो गया।

विमग्ने शंकरे चापे दग्धा कृष्णत्वमागता।
तदा प्रभृति कालिन्द्याहृदञ्जन निभंजलम्॥

आध्यात्मिक रूप

पुराणोंमें इसे आध्यात्मिक रूपमें भी स्वीकार किया है। वृन्दाबन परात्पर ब्रह्मका ही धाम है, वृक्ष मुनि हैं, ५ योजन का विपिन का देह है, उसमें यमुना नदी 'सुषुम्ना' नाड़ी स्थानीय है।

"कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी"[७] यमुना कृष्णकी पटरानी बनी हैं। परात्पर की पत्नीके गौरवको यमुनाने प्राप्त किया है। भगवान् श्रीकृष्णकी आठ पटरानियोंमें कालिन्दीका चतुर्थ स्थान है। कार्तिक मास की यमद्वितीया तिथिके कथानकसे यमुना

---

१ नारद पुराण, उत्तर भाग, ७९। ८०
२. भविष्यपुराण
३. ब्रह्मवैवर्त पुराण, जन्म खण्ड, अध्याय २
४. श्रीमद्भागवत पुराण १०। १६, दशममें ६ बार कालिन्दी तथा ५ बार यमुनाका उल्लेख है।
५. गर्ग संहिता, वृन्दाबन खण्ड, अध्याय ४३
६. [क] वामन पुराण अ ६
[ख] हरिवंश पुराणमें भी यमुनाको श्यामल वर्णा लिखा है।
[ग] भागवत पुराणमें १६ अ० १ श्लोकमें कृष्णा नाम यमुनाका दिया है।
७. पद्मपुराण पाताल खण्ड ७ अ।

का मूर्तिमती होना सिद्ध है। यमने यमुनाके लिये वर प्रदान किया था कि आज द्वितीया के दिन स्नान करने वाले मेरे नरकोंको न देखेंगे। सुदूर देशोंसे प्रतिवर्ष लक्षशः यात्रीगण इस पर्वपर यमुनाके चरणोंमें अपने शिर श्रद्धासे झुकाते हैं। विश्राम घाट पर उनकी आरतीका क्रम भी प्रचलित है।

श्री यमुनाजी, श्रीकृष्ण और आचार्य-चरण—ये तीनों एक स्वरूप हैं। वल्लभ सम्प्रदायमें पद्म पुराणका एक श्लोक यमुना के ब्रह्मत्वमें प्रमाणित माना गया है:—

रसोऽयं परमाधारः सच्चिदानन्दलक्षणः।
ब्रह्मेत्युपनिषद्गीतस्तदेव यमुना स्वयम्॥

यमुनाजी विशेष पूज्या हैं। क्योंकि पुष्टिमार्गको विधाता यमुना ही हैं। बालकों के भाग्यका विधाता ब्रह्मा है वैसे ही भक्ति-मार्गीय जीवोंके भाग्यका निर्माण यमुना द्वारा ही सम्भाव्य है। ब्रह्म तथा जीवके बीच यमुनाजी तटस्था हैं, ब्रह्म सम्बन्धमें यमुनाजी साक्षी हैं। इस अभिप्रायसे मार्ग प्रकटनसे पूर्व आचार्यचरण श्री यमुनाजीको इष्ट मानकर उन्हें समस्त ग्रन्थ रचनाके पूर्व नमन किया। यमुनाष्टक उनकी सर्वप्रथम कृति है, इसमें यमुनाजीको सर्वसिद्धिदात्री सर्वशक्ति सम्पन्ना लिखा है:—

'नमामि यमुनामहं सकल सिद्धि हेतुं मुदा'[1]।

अन्य तीर्थोंमें एक सिद्धि दानकी भी सामर्थ्य नहीं है; किन्तु यमुनाजी अणिमा-महिमा आदि अष्टसिद्धि प्रदानमें समर्थ हैं।

प्रभुके साक्षात् स्पर्शके लिये मानवकी यह दूषित देह अयोग्य है, तदर्थ अलौकिक देह प्रदानकी सामर्थ्य श्री यमुनाजीमें है। यह प्रथम सिद्धि है, भगवल्लीलावलोकन द्वितीय सिद्धि है, भगवल्लीला रसानुभव तृतीय सिद्धि है, सर्वात्मभाव सिद्धि चतुर्थ सिद्धि है, पंचम विरह सिद्धि है। विरहद्वारा प्रभु हृदयमें सन्निहित होते हैं।

षष्ठ सिद्धि हृदयावलोकन है, गोचारण प्रभृति लीलाएँ घर बैठे ही दृष्टिगोचर होती हैं। भावात्मिका सिद्धि सप्तम है, तथा सर्व-गोचर अष्टमी सिद्धि है, सर्वत्र कृष्णमयी मूर्त्तिके दर्शन होते हैं। इस प्रकार अष्ट सिद्धियोंद्वारा श्रीकृष्ण सान्निध्य-प्रदान ही लाभकारी है। प्रभु अपने अष्टविध ऐश्वर्य यमुनाजीको समर्पित करते हैं, इस भावसे आचार्य वल्लभश्रीने ८ श्लोकोंमें अष्टक लिखा है।

श्री आचार्यचरणके पश्चात् इस सम्प्रदायमें यमुनावन्दन अनिवार्य हो गया। अनुयायी शिष्य वृन्दोंने यमुनाजीपर अपनी भावाञ्जलियाँ प्रस्तुत कीं। कृष्णदासके शब्द देखिये:—

१. व० प्र० पृ० ८ व० ५ श्र० १

श्री यमुने रसखान कों सीस नवाऊँ
देत सब सिद्धि निज भक्त कों सर्वदा अधिक आनन्द
गुन नित्य गाऊँ ॥

× × ×

श्री यमुने रससिन्धु रसदेनहारी
जिनके सदा ही आधीन गिरिवरधरन
करत रस केलि रति मान प्यारी ॥

× × ×

प्रानपति विहरत श्री यमुनाजू संगे ॥

अतः यमुनाजी केवल अन्य नदियोंकी भाँति जलराशि मात्र नहीं हैं। वे कृष्ण-प्रिया हैं, कृष्ण-संग विराजिता हैं और उनकी प्राप्तिमें सहायिका हैं। गुर्जरादि भक्त वैष्णवों द्वारा पूजनविधिमें यह भाव और भी अधिक उज्ज्वल रूपमें देखनेको मिलता है। यह पूजन श्रीयमुना तटपर रात्रिके समय ही होता है, इसे शृंगार पूजन कहा जाता है।

बल्लभ सम्प्रदायमें श्रीयमुनाजीका शृङ्गार श्रीकृष्ण जैसा किया जाता है। उसका कारण है कि राधाजीके अनुनयसे यमुनाजी मान कर बैठे हुए श्रीकृष्णको उन्हींका सा रूप बनाकर मनाने गई थीं।

"जायकें इकन्त बोऊ कीनी कथा मोहनकी,
जमुना नव रूप लेत मानके छुड़ानकी ।
करिकें सिंगार सत्य श्याम सम यमुनाने,
पीताम्बर मुकुट काछ कुंडल रस दानकी ॥
नख सिख शृंगार साज राधा गलबाही दे,
चली जहां नन्दलाल बैठे करि मानकी ।
आवत निहारे श्याम युगल छबि बाँह जोरि,
कीनो मुख हास जबै छूट्यौ मान कानकी ॥
[बागरोदी बल० श० दु० नाथद्वारा]

यमुना-कालिन्दी

कालिन्दीने अपना निवास यमुना जलमें बतलाया है, तो सिद्ध है कि दोनोंमें भेद है।" अनेन यमुनास्तस्याश्च भेदः प्रदर्शितः" इस सुबोधिनी वाक्यद्वारा यह स्पष्ट है[1]।

सूर्य ही कलिन्द पर्वतमें प्राप्त हुआ। अतः वह मातृ-स्थानीय है। यमकी उत्पत्ति से उसे दोष लगा था। अतः उसने यमुनाको उत्पन्न किया। अतः सूर्यपुत्री कलिन्दपुत्री कथनमें दोष नहीं। किन्तु यमुनाजी कालिन्दी से अधिक सामर्थ्यशालिनी हैं। यमुनाजीकी उत्पत्ति भौतिक सूर्यद्वारा नहीं, अपितु नारायणके आनन्दमय हृदयसे है[2]—

१. सुबोधिनी १० । ५८ । २२
२. यमुनाष्टक—हरिरायजी

"द्रवीभूत रसात्मैषा सर्वाङ्गीण
अमाम्बुभिः नारायणस्य हृदया-
च्छुद्धसत्त्व स्वरूपतः प्रादुरासी-
न्मूलरूप पुष्टि लीला प्रसिद्धये ।"

उक्त हरिरायजी महाराजके वाक्यद्वारा इसकी पुष्टि होती है। वह द्रव ही सूर्यमण्डल में आया पुनः कलिन्द पर्वतपर । कालिन्दी भौतिक सूर्यपुत्री हैं, यमुनाजी आधिदैविक सूर्यकी पुत्री हैं।

कलिन्द पर्वतने भी एक समय यमुनाजी से प्रार्थना की थी कि मेरे उदरसे आप प्रवाहित हों—

'ममोदरं प्रविश्य त्वं गच्छ चादित्यनन्दिनी ।
कालिन्दीति तवाख्यातिरस्तुलोक त्रये सदा ॥'

व्रजलीलामें चतुर्थ प्रिया श्रीयमुनाजी ही हैं, राजलीला (द्वारका) में कालिन्दीको समझना चाहिये।

श्रीकृष्णका भक्तवात्सल्य

कहा गुन बरनौं स्याम तिहारौ।
कुबिजा, विदुर, दीन द्विज, गनिका सबके काज सँवारे ॥
जज्ञ-भाग नहिं लियौ हेत सौं रिषिपति पतित बिचारे ।
भिल्लिनीके फल खाए भाव सौं खाटे-मीठे-खारे ॥
कोमल-कर गोबर्द्धन धारचौ जब हुते नंद दुलारे ।
दधि मिस आपु बँधायौ दाँवरि सुत कुबेरके तारे ॥
गरुड़ छाँडि प्रभु पाँय पियादे गज-कारन पग धारे ।
अब मोसौं अलसात जात हौ अधम उधारन हारे ॥
कहँ न सहाय करी भक्तनि की, पांडव जरत उबारे ।
सूर परी जहँ बिपति दीन पर, तहाँ विघन तुम टारे ॥

(सूरदासजीकी पदावलीसे)

—※—

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

षष्ट-वृष्टि—चतुर्थ धारा (नाम-भजन प्रणाली)

नाम कृष्णावतार स्वरूप हैं

अप्राकृत तत्त्वका स्वरूप-बोध ही स्वरूप-सिद्धि है। इसीका नाम यथार्थ सम्बन्ध-ज्ञान है। सम्बन्ध-ज्ञान होनेपर प्रेम-अनुशीलन रूप अभिधेय और प्रेम-प्राप्तिरूप प्रयोजनकी प्राप्ति होती है। कृष्णका चिन्मय धाम, उनका चिन्मय नाम, चिन्मय गुण और चिन्मय लीला—ये सब प्रेमके अन्तर्गत प्रयोजनविशेष हैं। प्रश्नोपनिषद्में श्रीभगवन्नाम-भजनकी प्रणाली निर्द्धारित की गयी है।[1] इस जगतमें श्री-नामको श्रीकृष्णका अवतार माना गया है। अक्षरात्मक नाम—अप्राकृत कृष्णावतार हैं।[2] नाम और नामी अर्थात् श्रीकृष्णनाम और स्वयं-कृष्ण अभिन्न हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार श्रीकृष्ण ही गोलोक-वृन्दावनसे इस जगतमें श्रीनामके रूपमें अवतीर्ण हैं। अतएव श्रीकृष्णनाम ही कृष्णका प्रथम परिचय है। श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए जीवको कृष्ण-नाम अवश्य ही ग्रहण करना चाहिए। श्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामीके प्रिय शिष्य श्रीगोपाल गुरु गोस्वामीने श्रीहरि-नामार्थ प्रसंगमें—विभिन्न शास्त्रोंके उद्धरण देते हुए हरिनामका

१—ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत् तत् कवयो वेदयन्ते। तमोङ्कारेनैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरं अमृतं अभयं परञ्चेति। तेषु सत्यं प्रतिष्ठितम्। ब्रह्मणो नाम सत्यम्।

—प्रश्नोपनिषद्।

२—ॐकार एवेदं सर्वं ओमित्येदक्षरमिदं सर्वम्।
सर्वव्यापिनमोङ्कारं मत्वा धीरो न शोचति॥
ॐकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः॥

भगवत्सन्दर्भे—अवतारान्तरवत् परमेश्वरस्यैव वर्णरूपेणावतारोऽयमिति। तस्मात् नामनामिनोरभेद एव। श्रुतौ—ॐमित्येतदब्रह्मणो नेदिष्ठं नाम यस्मादुच्चार्यमाण एव संसारभयात्तारयति तस्मादुच्यते तार इति। भक्तिसन्दर्भे।

अर्थ निर्णय किया है।[1] जैसे अग्नि-पुराणमें— ब्रह्माण्ड-पुराणमें—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
रटन्ति हेलयावापि ते कृतार्था न संशयः॥[1]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
ये रटन्ति होदं नाम सर्वपापं तरन्ति ते॥

१—हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः।
विज्ञाप्य भगवत्तत्त्वं चिद्घनानन्दविग्रहम्। हरत्यविद्यां तत् कार्यमतो हरिरिति स्मृतः॥
अथवा सर्वेषां स्थावरजंगमादिनां तापत्रयं हरतीति हरिः। यद्वा, दिव्य सद्गुणश्रवणकथन-द्वारा सर्वेषां विश्वादिनां मनो हरतीति। यद्वा, स्वमाधुर्येण कोटिकंदर्प-लावण्येन सर्वेषां अवतारादिनां मनो हरतीति। हरि शब्द सम्बोधने हे हरे।

अथवा ब्रह्मसंहितायां—

स्वरूपप्रेमवात्सल्यैर्हरेर्हरति या मनः। हरा सा कथ्यते सद्भिः श्रीराधा वृषभानुजा।
हरति श्रीकृष्णमनः कृष्णाह्लादस्वरूपिणी। अतो हरेत्यनेनैव राधेति परिकीर्तिता॥
इत्यादिना श्रीराधावाचक हरा शब्दस्य सम्बोधने हरे॥

आगमे—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्चानन्दस्वरूपकः। तयोरैक्य परं ब्रह्म कृष्णरित्यभिधीयते॥

वृहद्गौतमीये—

कृष्णशब्दः सत्पुमर्थः शक्तिरानन्दरूपिणी। एतद्योगात् सविकारं परं ब्रह्म तदुच्यते॥

ब्रह्मसंहितायां—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः। अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥
आनन्दैकसुखस्वामी श्यामः कमललोचनः। गोकुलानन्दनो नन्दनन्दनः कृष्ण ईर्यते॥
कृष्ण शब्दस्य सम्बोधने कृष्ण॥

आगमे—

राशब्दोच्चारणाद्वि बहिर्निर्यान्ति पातकाः। पुनः प्रवेशकाले तु मकारस्तु कपाटवत्॥
राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्त्रनामभिस्तुल्यं रामनाम वरानने॥

पुराणमें—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति राम पदेनैव परं ब्रह्माभिधीयते॥

किञ्च पुराणे—

वेदग्धिसारसर्वस्वमूर्तिलीलाधिदेवताम्। श्रीराधां रमयन्नित्यं राम इत्यभिधीयते॥
श्रीराधाश्चित्तमाकृष्य रमति क्रीड़ति इति रामः।
राम शब्दस्य सम्बोधने राम॥ —श्रीगोपाल गुरुः।

तत्संग्रहकारक: श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु:।
श्रीचैतन्य मुखोद्गीर्णा हरे कृष्णेति वर्णका:।
मज्जयन्तो जगत् प्रेम्नि विजयन्तां तदाह्वया ।।

महामन्त्रका अर्थ--

श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचैतन्य-भागवत—इन दोनों ही ग्रन्थों में "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।"—इस सोलह नाम (बत्तीस अक्षर) वाले हरिनाम महामन्त्रको तुलसी मालाके द्वारा जीव मात्रको ग्रहण करनेका उपदेश किया है। श्रीगोपालगुरु-गोस्वामीजीने श्री-महामन्त्रके सोलह नामोंके अर्थ इस प्रकार किये हैं—

'हरि' शब्दका उच्चारण करनेसे दूषित अन्त:करणवाले व्यक्तियोंके सारे पाप दूर हो जाते हैं। जिस प्रकार अनजानमें अनिच्छापूर्वक भी अग्निका स्पर्श होने पर वह स्पर्श करनेवालेको दग्ध कर देती है, उसी प्रकार अनिच्छापूर्वक भी 'हरि' शब्दका उच्चारण करनेसे समस्त पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। उक्त हरिनाम चिद्घानानन्द विग्रह-रूप भगवत् तत्त्वका प्रकाश कर अविद्या एवं उसके कार्यको ध्वंस करते हैं। इसी कार्यके लिए 'हरि' शब्द आविर्भूत हैं। अथवा स्थावर-जंगम समस्त प्राणियोंके तीनों तापोंका हरण (नष्ट) करनेके कारण 'हरि' शब्दका आविर्भाव है। अथवा अप्राकृत सद्गुण श्रवण एवं कथनके द्वारा सम्पूर्ण विश्ववासियोंके मनको हरण करते हैं। अथवा अपने कोटि-कंदर्प लावण्य एवं माधुर्यके द्वारा सम्पूर्ण जीवोंके और अवतारोंके चित्तको हरण (चुरा) लेते हैं। इस 'हरि' शब्दका सम्बोधनमें 'हरे' शब्दका प्रयोग हुआ है। ब्रह्म-संहिताके मतानुसार 'हरे' शब्दका बड़ा ही चमत्कारपूर्ण एवं अपूर्व अर्थ पाया जाता है। वह अर्थ इस प्रकार है—जो अपने रूप, माधुरी एवं प्रेम वात्सल्यादि द्वारा उपरोक्त श्रीहरिके मनको भी हरण कर लेती हैं, उन श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाजीका नाम ही 'हरा' है। श्रीमती राधिकाके इस 'हरा' नामका सम्बोधनमें 'हरे' शब्दका प्रयोग हुआ है।

'कृष्ण' शब्दका अर्थ आगमके मतानुसार इसप्रकार है—'कृष्'—धातुमें 'ण' प्रत्ययके योगसे जो 'कृष्ण' शब्द होता है, वह आकर्षक, आनन्द-स्वरूप कृष्ण ही परब्रह्म हैं। कृष्ण शब्दके सम्बोधनमें 'कृष्ण' है। आगममें इस प्रकार कहा गया है कि—हे देवि! 'रा' शब्दके उच्चारण करनेसे समस्त पापसमूह (मुखके द्वारसे) निकल जाते हैं और पुन: प्रवेश न कर पानेसे 'म'कार रूप कपाटसे युक्त राम नाम हैं। पुराणमें और भी कहा गया है कि वैदग्धिसार-सर्वस्व मूर्त्तिलीलाधिदेवता जो श्रीमती राधिकाके साथ नित्य रमण करते हैं, वे ही राम शब्द वाच्य कृष्ण हैं। भजन-क्रियाके विचारसे प्रत्येक नामोंके अर्थ प्रदर्शित होंगे।

सख्यानाम—

इस 'हरेकृष्ण' नामावलीको प्रेमारुरुक्षु भक्तजन संख्यापूर्वक कीर्तन और स्मरण करते हैं। कीर्तन-स्मरण करते समय नामोंके अर्थ चिन्तन द्वारा अप्राकृत स्वरूपका निरन्तर अनुशीलन करते रहते हैं। इस प्रकार निरन्तर अनुशीलन करते रहनेसे अतिशीघ्र ही सारे अनर्थ दूर हो जाते हैं और चित्त निर्मल हो जाता है। नामाभासके सहित निरन्तर नाम-कीर्तन करनेसे शुद्धचित्तमें स्वभावतः अप्राकृत नाम उदित होते हैं।[1]

साधक और सिद्ध—

नाम ग्रहणकारी दो प्रकारके होते हैं—साधक और सिद्ध।[2] साधक भी पुनः दो प्रकारके होते हैं—प्राथमिक और प्रात्यहिक। इनके अतिरिक्त नित्य सिद्धगण देहके सम्बन्ध-में सिद्ध होते हैं। प्राथमिक साधकगण नामकी संख्या क्रमशः बढ़ाते-बढ़ाते इस अवस्थामें पहुँच जाते हैं कि वे निरन्तर नाम-कीर्तन करने लगते हैं। उनके नामकीर्तनका क्रम टूटता ही नहीं। ऐसी दशामें वे प्रात्यहिक साधक कहलाते हैं। प्राथमिक साधकोंकी

१—स्यात् कृष्णनामचरितादि सिताप्यविद्या-पित्तोपतप्तरसनस्य न रोचिका नु।
किन्त्वादरादनुदिनं खलु सैव जुष्टा स्वाद्वी क्रमाद्भवति तद्गतमूलहन्त्री॥
—(उपदेशामृत)

२—तत्र भक्तो द्विविधः—साधकः सिद्धश्च। साधको द्विधा—प्राथमिकः प्रात्यहिकश्च। देहेन सिद्धो नित्यसिद्धः। तत्र प्राथमिको निज चित्तशुद्धार्थं जपति—हे हरे, मच्चित्तं हृत्वा भवबन्धान्मोचय।१। हे कृष्ण, मच्चित्तमाकृष।२। हे हरे, स्वमाधुर्येन मच्चित्तं हर।३। हे कृष्ण, स्वभक्तद्वारा भजनज्ञानदानेन मच्चित्तं शोधय।४। हे कृष्ण, नाम-रूप-गुणलीलादिषु मन्निष्ठां कुरु।५। हे कृष्ण, रुचिर्भवतु मे।६। हे हरे, निज सेवा योग्यं मां कुरु।७। हे हरे, स्वसेवामादेशय।८। हे हरे, स्वप्रेष्ठेन सह स्वाभीष्ट लीलां श्रावय।९। हे राम, प्रेष्ठया सह स्वाभीष्ट लीलां मां श्रावय।१०। हे हरे, स्वप्रेष्ठेन सह स्वाभीष्ट लीलां मां दर्शय।११। हे राम, प्रेष्ठया सह स्वाभीष्टलीलां मां दर्शय।१२। हे राम, नामरूपगुणलीलास्मरणादिषु मां योजय।१३। हे राम, तत्र मां निजसेवा योग्यं कुरु।१४। हे हरे, मां स्वाङ्गीकृत्य रमस्व।१५। हे हरे, मया सह रमस्व।१६।

पुनः पुनः सुदृढ़ाभ्यासजन्यसंस्कारेण नैसर्गिकः प्रात्यहिकः साधकः सिद्धानुगो मनसि स्यादिति। —गोपालगुरुः।

अविद्यारूप पित्तदोषसे बिगड़ी हुई रसनामें हरिनामके प्रति रुचि नहीं होती। तुलसी मालापर संख्याके साथ निरन्तर नाम करते-करते नैरन्तर्य-सिद्धि या प्रात्यहिक अवस्था उपस्थित होनेपर नाममें कुछ-कुछ आदर उत्पन्न होता है। उस अवस्थामें नामोच्चारण नहीं करनेसे अच्छा नहीं लगता और इच्छा होती है कि सब समय नाम-कीर्तन-करता रहूँ। इस प्रकार आदरके साथ निरन्तर नाम करते-करते नाम-ग्रहणमें परमास्वाद प्रतीत होने लगता है। इस समय पाप, पापबीज—जिसे पाप-वासना भी कहते हैं और इन सबका मूल जो अविद्या-अभिनिवेश है—यह सब कुछ स्वयं दूर हो पड़ता है। प्राथमिक अवस्थामें निरपराध होकर नाम करनेकी चेष्टा और आग्रहका होना अत्यन्त आवश्यक है। और ऐसा तभी होगा, जबकि दुःसंगका परित्याग किया जाय और साधुसंगमें सद्धर्मकी शिक्षा ग्रहण की जावे।[1] प्राथमिक अवस्था बीत जानेपर आदरपूर्वक निरन्तर नाम करते-करते नाममें रुचि और जीवोंके प्रति दया स्वभावतः ही वृद्धि होती है। इस विषयमें कर्म, ज्ञान या योग आदिको सहायताकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। यदि वे कार्य-समूह उस समय प्रबल रहते हैं, तो वे शरीर-यात्रा-निर्वाह द्वारा नाम भजनकारी साधकका उपकार करते हैं। निर्बन्धिनी मतिके सहित तदीय अर्थात् विशुद्ध भगवद्भक्तोंके सङ्गमें नामकीर्तन करते-करते थोड़े ही समयमें चित्त-शुद्धि और अविद्यानाशकी प्रक्रिया उपस्थित हो जाती है। जितने ही अंशोंमें अविद्याका नाश होता जायगा, उतने ही अंशोंमें युक्त वैराग्य और सम्बन्ध-ज्ञान स्वाभाविक रूपसे उदित होकर चित्तको निर्मल करते जायँगे। समस्त विद्वन्मण्डलीमें इस तथ्य की बार-बार परीक्षा हो चुकी है।

श्रीनामके समीप सक्रन्दन प्रार्थना—

नाम-ग्रहणके समय नामके स्वरूप-अर्थ-का अनुशीलन करते हुए श्रीकृष्णके समीप रो-रो कर प्रार्थना करनी चाहिए। इस प्रकार करनेसे श्रीकृष्णकी कृपासे क्रमशः भजनमें ऊर्द्ध्वगति होती है। ऐसा नहीं करने पर कर्मियों और ज्ञानियोंकी भाँति साधनमें बहुतसे जन्म व्यतीत हो जाते हैं।

भारवाही, सारग्राही—

भजनमें प्रवृत्त होनेवाले साधक दो भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। अर्थात् उनमेंसे कोई-कोई भारवाही होते हैं और

१—तथापि संगः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत्।
मद्भक्तियोगेन दृढ़ेन यावद्रजो निरस्येत मनः कषायः॥ (भा० ११।२८।३७)
यन्नानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु संगमूढ़म्।
व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः॥ (भा० १।१८।२२)

कोई-कोई सारग्राही। जो लोग हरिनाम करने पर भी भोग और मोक्षकी कामना रखते हैं तथा जड़ीय संसारमें आसक्त रहते हैं, वे धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी चेष्टाके भारमें दबे हुए रहते हैं। वे लोग सार वस्तु—प्रेम है, इस तथ्य को जान नहीं पाते। अतएव बहुत प्रयास करके भी तथा अत्यधिक परिश्रम करनेपर भी वे भजनमें उन्नति लाभ नहीं कर पाते। दूसरे प्रकारके सारग्राहीजन प्रेम ही सारतत्त्व है, ऐसा जानकर प्रेमतत्त्वके प्रति लक्ष्य करके अत्यन्त शीघ्र ही वांछनीय-स्थलको प्राप्त होते हैं। इनको ही प्रेमारुरुक्षु कहते हैं। ये ही अति शीघ्र प्रेमारूढ़ होते हैं या सहज परमहंस की अवस्थाको प्राप्त होते हैं। यदि सौभाग्यके कारण कभी भारवाही साधकजन सत्सङ्गमें सारतत्त्वको जानकर उसके प्रति आदर करने की शिक्षा ग्रहण करें, तो वे भी अति शीघ्र ही प्रेमारुरुक्षु हो पड़ते हैं।[1]

श्रद्धा, साधुसंग—

अनेक जन्मोंकी भक्त्युन्मुखी सुकृतिके बलसे भक्ति-पथमें श्रद्धा होती है। वही श्रद्धा भक्तसङ्गमें रुचि पैदा करती है। शुद्धभक्तोंके सङ्गमें भजन आदि करनेसे प्रेमोन्मुखी साधन-भक्ति उदित होती है। शुद्धभक्तोंकी कृपासे साधन-प्रणाली ग्रहण करनेसे शीघ्र ही प्रेमारुरुक्षु हो पड़ते हैं। मिश्रभक्त या भक्ताभासके संगमें भजन-शिक्षा करनेसे प्रेम बहुत दूर पड़ जाता हैं। वैसे संगमें भजन करनेसे ऐकान्तिकता भी नहीं आती। इस अवस्थामें अनर्थसमूह प्रबल होकर शुद्ध भक्तोंके प्रति आदरकी बुद्धि नहीं करने देते। अधिकन्तु कुटिलता आकर हृदय-को कपट बना देती है। इस अवस्थामें साधक-गण प्रायः कनिष्ठाधिकारीके रूपमें ही अनेकों जन्म व्यतीत करते हैं। कनिष्ठ श्रद्धा हुई है, वह बड़ी कोमल होती है तथा सर्वदा लौल्य-द्वारा परिचालित होती है। उनको उसी प्रकारके गुरु और साधुओंका संग मिलता है। उनके हृदयकी चञ्चलता दूर करनेके लिए आगम मार्गकी पद्धतिके अनुसार गुरुसे अर्चन-शिक्षा की आवश्यकता होती है। अनेक कालतक अर्चन करते-करते तब कहीं नामके प्रति श्रद्धा पैदा होती है। नामके प्रति श्रद्धा होने पर ही साधुसंगमें नाम-भजनकी प्रवृत्ति होती है।[2] क्रमशः

१—ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां, स्त्रीशूद्र हूणशबरा अपि पापजीवाः।
यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये॥ (भा० २।७।४६)

२—भगवन्नामात्मका एव मन्त्राः। तत्र विशेषेण नमः सम्पद्यलङ्कृताः श्रीभगवताहितशक्ति-वशेषाः। तत्र केवलानि श्रीभगवन्नामान्यपि निरपेक्षाण्येव परमपुरुषार्थफलपर्यन्तदानसमर्थानि नामतः मन्त्रेषु अधिकसामर्थ्यमलब्धम्। तथापि प्रायः स्वभावतः देहादिसम्बन्धेन कदर्यशालिनां विक्षिप्त चित्तानां जनानां तत्तत् संकोचीकरणाय मन्त्र-दीक्षा एव कर्तव्या अर्चनमार्गे श्रद्धा चेत्।
—भक्ति सन्दर्भ

पूजा और सेवा

विभु (बृहत् या महान्) और अपनेसे श्रेष्ठ वस्तुके प्रति संभ्रमके साथ जो सम्मान प्रदर्शन किया जाता है, वही 'पूजा' है। पूजा करनेवाला व्यक्ति अपनेसे उन्नत वस्तुको 'पूज्य' समझकर कर्त्तव्य बुद्धिके साथ उस वस्तुके प्रति जो सम्मान प्रदर्शन करता है, वही पूजा है। पूजामें विधि या कर्त्तव्यबुद्धि प्रबल है। इस कर्त्तव्यबुद्धिद्वारा प्रेरित होकर जगतके लोग पिता, माता, बड़े भाई या बड़ी बहिन, राजा, ब्राह्मण, समाजके श्रेष्ठ व्यक्ति और देवताओं के प्रति सम्मान प्रदर्शन करते हैं। इन कार्योंको 'पूजा' कह सकते हैं। पूजामें संकल्प होता है, कामना रहती है और पूज्य-पूजकमें परस्पर आदान-प्रदानकी व्यवस्था होती है। जगतमें जितनी भी देवता आदियोंकी पूजाएँ होती हैं, वे इसी प्रकारकी हैं।

यह तो हो गई प्राकृत जगतकी बात। अप्राकृत धाममें भी ऐश्वर्यबुद्धिसे, विभुज्ञानसे पूजाकी प्रणाली देखी जाती है। श्रीभगवान् श्रीकृष्णके ऐश्वर्यप्रकाश श्रीनारायणके उपासक लोग श्रीनारायणके प्रति जो श्रद्धा-सम्मान प्रदर्शन करते हैं, वह पूजा कहलाने योग्य है। श्रीलक्ष्मीजी श्रीमन् नारायणकी जो सेवा करती हैं, वह वास्तवमें श्रीनारायणकी पूजा कहलाने योग्य है। पूजामें ऐश्वर्य-बुद्धिकी प्रधानता है, उसमें सम्भ्रमरूप वैषम्य सर्वदा वर्त्तमान है। वैध अर्चन-मार्गके सभी कार्य ही 'पूजा' के अङ्ग-विशेष मात्र हैं। पूजामें पूज्य बड़े हैं और पूजक चिरकाल ही छोटा है। पूजामें पूज्य प्रभु और पूजक दास है। पूजामें पूजकका कर्त्तव्य है 'पूजा करना' और पूज्यका धर्म है 'पूजा ग्रहण करना'। पूजा में पूजक पूज्य के समीप जाकर भी पूज्यसे सर्वदा दूर रहकर सुखी है। पूजक सर्वदा ही यह सोचता है कि पूज्यकी मर्यादा उल्लंघन करना बड़ा ही अपराधजनक कार्य है। साधारण जीवोंमें ऐसी मर्यादा-बुद्धिका होना स्वाभाविक है और उनमें ही यह प्रबला होती है। इस मर्यादा-बुद्धिको अतिक्रम करनेके लिए अस्वाभाविक चेष्टा करने पर जीव यथार्थ ही भगवच्चरणोंमें अपराधी होकर प्राकृत-सहजिया हो पड़ते हैं। इसलिए भक्तिराज्यमें कनिष्ठाधिकारीके लिए अर्चन-मार्ग या पूजाकी व्यवस्था है। यथार्थमें श्रीराधागोविन्दकी पूजा नहीं हो सकती। कनिष्ठ अधिकारी जो 'श्रीराधा-गोविन्दकी सेवा कर रहा हूँ' ऐसा सोचकर श्रीविग्रहकी पूजा या अर्चन करते हैं, उसके द्वारा श्रीनारायणकी ही पूजा होती है। अंशीतत्त्व श्रीगोविन्द या श्रीकृष्णमें मर्यादामय उपास्य श्रीनारायण, नैमित्तिक अवतार-समूह, पुरुषावतार-त्रय आदि सभी अवतार ही अवस्थित हैं। अतएव अर्चन-मार्गमें श्रीनारा-

यणकी ही पूजा होती है। कनिष्ठाधिकारीका श्रीराधागोविन्दके प्रति उद्दिष्ट अर्चन और एवं महाभागवतकी भाव-सेवामें आकाश-पातालका भेद वर्त्तमान है। पहला कार्य पूजा है और दूसरा कार्य भजनसुष्ठुता या भजनप्रवीणता द्वारा सम्पन्न सेवा है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी प्रभुद्वारा श्रीश्री चैतन्य महाप्रभु प्रदत्त गोवर्द्धन शिलाका 'सात्त्विक-पूजन' कनिष्ठाधिकारीके अर्चन या पूजाको तरह नहीं है। वह साक्षात् श्रीराधागोविन्दको भाव-सेवा है। ऐश्वर्य-बुद्धिके द्वारा व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी सेवा नहीं होती। श्रीचैतन्य-चरितामृत, अन्त्य-लीला, ७वें परिच्छेद में कहा गया है—

'ऐश्वर्यज्ञाने लक्ष्मी ना पाइल व्रजेन्द्रनन्दने।'

ऐश्वर्यज्ञान या पूजामें वास्तविक आकर्षण नहीं है। केवल विभु वस्तुके ऐश्वर्य दर्शनकर अणुवस्तु जीव कर्त्तव्यबुद्धि द्वारा विभु वस्तुके निकट मस्तक झुकानेके लिए प्रेरित होते हैं। ऐसे स्थानमें पूज्यका ऐश्वर्य पूजककी श्रद्धा को आकर्षण करता है। किन्तु सेवामें साक्षात् सेव्य स्वयं सेवकद्वारा आकृष्ट होते हैं। इसलिए सेवा श्रीकृष्णकर्षिणी है अर्थात् उसकेद्वारा श्रीकृष्णको आकर्षण किया जा सकता है। जिस परमतत्त्वकी पदनखचन्द्र शोभा लक्ष्मीजीको तो क्या, स्वयं नारायण को भी आकर्षण कर लेती है, वे ही परमतत्त्व उनके अहैतुक सेवकोंकी सेवाद्वारा आकृष्ट होते हैं। इसीका नाम 'सेवा' है। सेवामें विश्रम्भ और घनिष्ठ भाव इतना अधिक वर्त्तमान है कि वह सेवा-सौष्ठव या भली प्रकारसे सेवा सम्पादन करानेके लिए सेवक-को सेव्यसे बड़ा बना देता है, पाल्यको पालक बना देता है, वश्यको प्रभु बनाता है। ऐश्वर्यबुद्धि प्रबला रहते समय या प्राकृत ज्ञान द्वारा इस बातका तात्पर्य समझा नहीं जा सकता। श्रीभगवत्पाद श्रीमद्रामानुजाचार्य-जी भी इस सेवा-माधुरीकी बात जगतमें प्रकाश नहीं कर सके। फिर तो प्राकृत-बुद्धि सम्पन्न जागतिक व्यक्तियोंके निकट यह सेवा-माधुरीकी बात कहने योग्य वस्तु ही नहीं है।

प्राकृत व्यक्तिका अर्चन या मर्यादा मार्गमें ही अधिकार है। श्रीमठादि-स्थापन, महोत्स-वादि, धाम-परिक्रमा आदि भक्तिके अङ्ग, ग्रन्थादि-प्रचार या हरिकथा-प्रचार—ये सभी अर्चन मार्गके कार्य हैं। कनिष्ठाधिकारीके लिए इन सभी कार्योंकी आवश्यकता है; नहीं तो कदापि उनका मंगल नहीं हो सकता। क्योंकि साधारण जीवोंकी चित्तवृत्ति देहकी नाना प्रकारकी चेष्टाओं तथा असत् विषयोंके प्रति लगी हुई है। उसे सङ्कोचित कर भगवान् को सेवामें नियुक्त करनेके लिए प्राथमिक अवस्थामें (अनात्मोपलब्ध अवस्था में) निर्णीत अर्चन-मार्ग या कर्ममिश्रा भक्तिको छोड़कर शुद्धभक्ति या निर्मल सेवाकी योग्यता प्राप्त नहीं होती। जो व्यक्ति इन सभी साधन-भक्तिके अनुष्ठानोंको 'अर्चन-मार्ग' समझकर आलस्यको स्थान देनेके लिए तथा नानाप्रकार-

की असत् चिन्ताओं और मनोधर्मादिमें मनको नियुक्त कर कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा आदि कपटताओंका संग्रह करनेके लिए अर्चन-अवस्थामें रहते हुए भी जिस निर्जन-भजन करनेका अभिनय दिखलाते हैं, उसकेद्वारा अकालमें ही हरिभजनसे पतित होकर हरि-विमुखतारूप घोर पथके पथिक हो पड़ते हैं। सद्गुरु जगतका मंगल करनेके लिए क्रमपथके अनुसार उन्हें भजनादिकी शिक्षा देते हैं।

आत्मवृत्तिके द्वारा श्रीराधागोविन्दकी ही सेवा या भजन होता है। वह सेवा अप्रतिहता (बाधारहिता), अहैतुकी तथा अन्याभिलाष, ज्ञान, कर्म और मोक्षवांछा आदिद्वारा अनावृता होती है। श्रीमन् नारायणके उपासकोंकी सालोक्यादि मुक्ति-वांछा भी उसमें नहीं है। नारायणका चतुर्भुजत्वरूप ऐश्वर्यज्ञानोत्पादक लीलामय-श्रीमूर्त्ति शुद्ध सेवकोंकी आदरकी वस्तु नहीं होती। तदीयता-भाव परायण सेवकोंके निकट विश्रम्भ-भाव इतना प्रबल है कि ऐश्वर्यका लेशमात्र भी सेवकको प्रलोभित या मोहित नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण शुद्ध माधुर्यमय हैं। असुरमारणादि कार्य ऐश्वर्यभावयुक्त होनेके कारण वे स्वयं अंशी श्रीकृष्णके अंश विष्णुके द्वारा सम्पन्न होते हैं। प्रेमरस-निर्यासका आस्वादन करना ही श्रीकृष्णका कार्य है। श्रीकृष्णके नित्य-सेवक लोग निरन्तर अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णका मनोभीष्ट परिपूर्ण करते हुए उनकी सन्तुष्टि या सेवा कर रहे हैं। वहाँ ऐश्वर्यका लेशमात्र भी नहीं होता। ऐश्वर्य द्वारा शिथिल प्रेमके द्वारा श्रीकृष्णकी प्रीति नहीं होती। ऐश्वर्य सेव्य और सेवकको परस्पर दूर रखता है, किन्तु माधुर्य सेव्य और सेवकके बीच सम्पूर्णतम घनिष्ठता उत्पन्न करता है—

"ऐश्वर्य ज्ञानेते सब जगत मिश्रित।
ऐश्वर्य शिथिल प्रेमे नाहि मोर प्रीत॥
आमाके ईश्वर माने आपनाके हीन।
तांर प्रेमे वश आमि ना हई अधीन॥
मोर पुत्र, मोर सखा, मोर प्राणपति।
एइ भावे जेइ मोरे करे शुद्धभक्ति॥
आपनाके बड़ माने, आमारे सम हीन।
सेइ भावे आमि हइ ताँहार अधीन॥
वैकुण्ठाद्ये आहि जे जे लीलार प्रचार।
से से लीला करिब जाते मोर चमत्कार॥"
(श्रीचै० च० आदि ४ र्थ प०)

"शुद्ध प्रेम व्रजदेवीर कामगन्ध हीन।
कृष्णसुखतात्पर्य एइ तार चिह्न॥
सर्वोत्तम भजन इहार सर्वभक्ति जिनि।
अतएव कृष्ण कहे, आमि तांर ऋणी॥"
(श्रीचै० च० अन्त्य ७र्वां प०)

अतएव पूजाका दूसरा नाम 'अर्चन' है। सेवा का दूसरा नाम 'भजन' है। यह सेवा या भजन ही जीवोंके लिए परमलोभनीय श्रेष्ठपद है। अनर्पितचरप्रेमप्रदाता स्वयं भगवान

श्रीश्रीगौरहरि अपनी भजनमुद्रा या सेवाकी शिक्षा देनेके लिए ही इस प्रपंचमें अवतीर्ण हुए थे। परदुःखकातर श्रील सनातन गोस्वामीपादने इसी सेवाकी शिक्षा देनेके लिए ही सम्बन्ध-ज्ञानकी बात जगतमें प्रचार की थी। सेवाके मूर्त्तिमान श्रीविग्रह श्रील रूप गोस्वामीपादने इस सेवाकी ही बात कीर्त्तन की थी। अभिन्न श्रीरूपसनातन श्रीगुरुदेव जगत्के जीवोंको उस सेवामें अधिष्ठित करनेके लिए सर्वदा ही व्याकुल रहते हैं। श्रील नरोत्तम ठाकुरजी हमें सेवाकी शिक्षा देनेके लिए हमारी दुर्दशाका स्मरण कर यह बात कही थी—

"किरूपे पाइब सेवा मुइ दुराचार।
श्रीगुरुवैष्णवे रति ना हइल आमार॥"

प्राकृत अभिमान रहते समय कदापि सेवा नहीं होती। सेवा आत्माका अप्राकृत सहज धर्म है, सेवा श्रीकृष्णार्कपिणी है, सेवा ही सौन्दर्य है और सेवा ही श्रीरूप है। श्रील नरोत्तम ठाकुर कहते हैं—

"श्रीरूपमञ्जरी पद सेवों निरन्तर।
तांर पादपद्म मोर मन्त्रमहौषधि।"

श्रील रघुनाथदास गोस्वामीपादने उस सेवारूपिणी श्रीरूपमञ्जरीकी बात अपने विलापकुसुमाञ्जलिमें इस प्रकारसे उल्लेख की है—

"यदवधि मम काचिन्मञ्जरी रूपपूर्वा.
व्रजभुवि बत नेत्रद्वन्द्वदीक्षां चकार।
तदवधि तव वृन्दारण्यराज्ञि प्रकामं
चरण कमल लाक्षा संदिदृक्षा ममाभूत्॥
यदि तव सरोवरं सरस-भृङ्ग-संघोल्लसत्
सरोरुहकुलोज्ज्वलं मधुरवारिसम्पूरितम्।
स्फुटत् सरसिजाक्षि हे नयनयुग्म साक्षात्बभौ
तदैव मम लालसाजनि तवैव दास्ये-रसे॥
पादाब्जयोस्तव विना वरदास्यमेव
नान्यत् कदापि समये किल देवि याचे।
सख्याय ते मम नमोऽस्तु नमोऽस्तु नित्यं
दास्याय ते मम रसोऽस्तु रसोऽस्तु नित्यम्॥

"हे वृन्दावनेश्वरि! हे श्रीमती राधिके! जिस दिनसे इस वृन्दावनमें 'श्रीरूप' यह नामधारिणी किसी एक अनिर्वचनीया मञ्जरीने तुम्हारी परिचर्यासेवा आदिकी शिक्षा देनेके लिए मेरे प्रति अपनी शुभ-दृष्टि निक्षेप की है, उस दिनसे तुम्हारे श्रीचरण-युगलका अलक्तक (लालिमायुक्त लाक्षा) का दर्शन करनेके लिए मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। जिस दिनसे तुम्हारे सरोवर 'श्रीराधाकुण्ड' शब्द करते हुए भृङ्गोंद्वारा प्रफुल्लित कमलदलद्वारा विशोभित एवं सुमधुरवारिपरिपूर्ण होकर मेरे नयनयुगलके सामने प्रकटित हुए हैं, उस दिनसे तुम्हारे दास्यरसमें मेरी लालसा हुई है। हे देवि! आपके चरणकमलके दास्यको छोड़कर मैं कदापि अन्य गौरवमयी सखीत्वादिकी प्रार्थना नहीं करता। अतएव तुम्हारे सखीत्वके प्रति मेरा नित्य नमस्कार है, नमस्कार है। मैं शपथ कर कह रहा हूँ कि तुम्हारे विश्रम्भ दास्य के प्रति मेरा शुद्ध अनुराग हो, अनुराग हो।"

यही सेवाकी पराकाष्ठामय भाव है। यही श्रीरूपानुग वैष्णवोंके लिए परम लोभ-नीय वस्तु है। इसी सेवा-भावद्वारा व्रजेन्द्र नन्दन श्रीकृष्ण आकृष्ट होते हैं।

—साप्ताहिक 'गौड़ीय' से उद्धृत

प्रचार-प्रसंग

(क) श्रीश्रीप्राचार्यदेवका २४ परगना (सुन्दरवन) के विभिन्न स्थानोंमें शुद्धा-भक्तिका प्रचार--

श्रीसमितिके वर्त्तमान आचार्य परिव्राजकाचार्य त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजजी सुन्दरवनके नगरावाद, राजराजेश्वरपुर तथा 'आई' प्लाटके विभिन्न ग्रामोंमें श्रीमन्महाप्रभुके आचरित और प्रचारित शुद्धा भक्तिधर्मका प्रचार अपने ओजस्वी भाषणों, छाया-चित्रके द्वारा श्रीगौरलीला, श्रीकृष्णलीला और श्रीरामलीला आदि प्रदर्शनके माध्यमसे बड़े जोर-शोरसे कर रहे हैं। उनकी दैनन्दिन धर्म-सभाओंमें श्रीभागवत-पाठ, प्रवचन, भाषण, छाया-चित्र प्रदर्शिनियोंमें बृहत् संख्यामें श्रद्धालु जनता उपस्थित होकर उनके उपदेशोंका श्रवण करती है। बहुत-से श्रद्धालुजन उनके उपदेशोंसे प्रेरणा पाकर विशुद्ध भक्तिमार्गपर अग्रसर होनेके लिए उत्साहित हो रहे हैं। इनके साथमें श्रीमुरलीमोहन ब्रह्मचारी, श्री कानाईलाल ब्रह्मचारी, श्रीगोवर्द्धनदास ब्रह्मचारी, आदि ५-७ ब्रह्मचारी हैं।

(ख) हुगली एवं बर्द्धमान के (पश्चिम बङ्गाल) के विभिन्न स्थानोंमें शुद्धा-भक्तिका प्रचार--

श्रीसमितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद भक्तिवेदान्त उद्ध्वंमन्थी महाराज एवं त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज पश्चिम बङ्गालके कालना, गोआडा, आमदपुर, बड़बहरकुली (बर्द्धमान), पाण्डुया, बैंची ग्राम, चेतुआ (हुगली) आदि ग्रामोंमें शुद्धा भक्तिका प्रचार कर रहे हैं। इनके साथमें श्रीश्यामगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीहरिदास ब्रह्मचारी आदि हैं। ये प्रचारक वृन्द अपने धार्मिक भाषणों, प्रवचनों और छाया-चित्र आदिके द्वारा विशुद्ध सनातन धर्मका प्रचार कर उक्त अञ्चलोंमें शुद्धा भक्तिकी धारा प्रवाहित कर रहे हैं। लोग बड़ी श्रद्धासे बड़ी संख्यामें इनकी धर्म-सभाओंमें योगदान करते हैं।

(ग) २४ परगना और मेदिनीपुरमें--

श्रीसमितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त राद्धान्ती महाराज काशीनगर, गिलारछाट, कईखाली, रायदिघि, कृष्णचन्द्रपुर, चाँदनगर, डायमण्ड-हारबर,

सरबेड़िया, एकतारा, होटुगञ्ज (२४ परगना), नरघाट, पूर्वचक, बजबज, ऐड़ाशाल, पिछलदा, कल्याणपुर (मेदिनीपुर) आदि स्थानोंमें श्रीमन्महाप्रभु प्रदर्शित भक्ति धर्मका प्रचार कर रहे हैं। इनके साथमें श्रीहरिसाधन ब्रह्मचारी, श्रीचिन्मयानन्द ब्रह्मचारी, श्रीसत्यसङ्कल्प ब्रह्मचारी एवं श्रीधनञ्जय दासाधिकारी आदि मठवासी हैं।

(च) मेदिनीपुर (सबङ्ग अञ्चल) में–

श्रीपाद वृषभानु ब्रह्मचारी, श्रीहरिहर ब्रह्मचारी, श्रीभक्तपांघ्रिरेणु ब्रह्मचारी आदि ब्रह्मचारियोंके साथ मेदिनीपुर (सबंग अञ्चल) के लौगाँव, बेनिया एवं अन्यान्य गाँवोंमें शुद्धा भक्तिका प्रचार कर रहे हैं।

(छ) श्रील नरहरि 'सेवाविग्रह' प्रभुका तिरोभाव-महोत्सव–

जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके प्रधान एवं अन्तरंग शिष्योंमें अजातशत्रु श्रीश्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभुका नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये श्रील प्रभुपादके प्रिय पार्षद एवं अस्मदीय श्रीलगुरुपादपद्म परमाराध्यतय १०८ श्रीश्रील केशव गोस्वामी महाराजके अन्तरंग एवं अभिन्न बन्धु थे। भगवद् इच्छासे गौड़ीय मिशन त्याग करनेके पश्चात् ये महापुरुष अप्रकट–लीला तक अस्मदीय श्रीलगुरुपादपद्मके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल-मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें निवास किये। ये एकनिष्ठ एवं आदर्श भजनपरायण थे। ये इतने स्निग्ध, प्रेमी, ईर्ष्या-द्वेषरहित, सरल, निष्कपट, एवं शुद्धा भक्तिके सर्वसद् गुणोंसे सम्पन्न थे कि श्रील प्रभुपादने इन्हें 'अजातशत्रु सेवाविग्रह' प्रभु की उपाधिसे विभूषित किया था तथा श्रीगौड़ीय मिशनके मूल-मठ—स्वयं भगवान् कलिपावनावतारी श्रीगौरसुन्दरकी आविर्भाव—स्थली श्रीधाम मायापुर स्थित आकर—मठराज श्रीचैतन्य मठका मठ संरक्षक नियुक्त किया था। इनमें वैष्णवोंके सम्पूर्ण गुण प्रकाशित थे। इनका आविर्भाव २४ परगनाके एक छोटेसे आनन्दपाड़ा नामक गाँवमें हुआ था। ये बाल–ब्रह्मचारी थे। बचपनसे ही इनमें भगवद् भक्तिके लक्षण प्रकाशित होने लगे थे तथा अल्प अवस्थामें ही इन्होंने घर–गृहस्थीका त्याग कर जगदगुरु श्रील प्रभुपादका पादाश्रय ग्रहण किया था। तबसे मठ-जीवन व्यतीत कर हा श्रील प्रभुपादके आनुगत्यमें तथा उनके अप्रकट होने पर अस्मदीय श्रीलगुरुपादपद्मके साथ रहकर श्रीनवद्वीप धामस्थ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें भजन किया। यहीं पर माघी कृष्ण-पञ्चमी तिथिको (१८६६ शकाब्द) भगवन्नाम करते-करते हरिसङ्कीर्त्तनके बीच श्रीश्रीराधाकृष्ण की निशालीलामें प्रविष्ट हुए।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल-मठ एवं सभी शाखा मठोंमें इन महापुरुषका विरहोत्सव मनाया गया है। विशेषतः उनके आविर्भाव स्थान—आनन्दपाड़ामें इनके श्रद्धालु भतीजे श्रीगोपालचन्द्र वसु महोदय श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आनुगत्यमें समारोहके साथ यह विरहोत्सव सम्पन्न करते हैं।

पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत २३ माघ, २७ जनवरी, मंगलवारके दिन श्रील सेवाविग्रह प्रभुका विरह-महोत्सव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सेक्रेटरी त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीकी अध्यक्षतामें बड़े समारोहके साथ सुसम्पन्न हुआ है। उक्त दिवस आनन्दपाड़ामें विभिन्न स्थानोंसे वैष्णवगण पधारे थे। हजारों उपस्थित श्रद्धालु जनोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। शामको पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्ति-वेदान्त त्रिविक्रम महाराजके सभापतित्वमें एक महती धर्मसभाका आयोजन किया गया था जिसमें हरिनाम-संकीर्त्तनके पश्चात् श्रीसभापति महोदय एवं विभिन्न वैष्णव वक्ताओंने श्रीसेवाविग्रह प्रभुके अतिमर्त्य-जीवनचरित्रके विविध पहलुओं एवं आदर्शोंके ऊपर बड़ा ही सुन्दर एवं उपदेशपूर्ण प्रकाश डाला।

—निजस्व सम्वाददाता

श्रीपत्रिकाके प्रेमी ग्राहकों से नम्र-निवेदन

भगवान् श्रीश्रीगौरचन्द्रकी अहैतुकी कृपासे श्रीपत्रिकाका पन्द्रहवाँ वर्ष पूर्ण होने जा रहा है। यह पत्रिका पूर्णतया आप लोगों की हार्दिक सहानुभूति एवं सहायता द्वारा ही चल रही है। अतः आप लोगोंसे हमारा नम्र निवेदन है कि जिन-जिन भाई-बहिनोंपर पत्रिका की जितनी भिक्षा बकाया हो, सो कृपया शीघ्रातिशीघ्र भेजनेकी कृपा करें तथा हमें अनुग्रहीत और उत्साहित करें। इति।

विनीत निवेदक,

प्रकाशक

* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
तेघरिपाड़ा, पो० नवद्वीप,
(**नदिया**)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग-पावनावतारी स्वयं **श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि**की निखिल भुवन-मङ्गलमयी **आविर्भाव तिथि-पूजा** (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें **श्रीगौड़ीयवेदान्त समिति** के उद्योगसे उपरोक्त ठिकानेपर आगामी ३ चैत्र, १७ मार्च, मंगलवारसे ९ चैत्र, २३ मार्च, सोमवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक **विराट महोत्सव** का अनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, **महाप्रसाद वितरण** प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे।

इस उपलक्ष्यमें श्रीश्रीनवद्वीपधामके अन्तर्गत नौ द्वीपोंका दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन करते हुए **सोलह-कोसकी परिक्रमा** होगी। गत वर्षकी तरह इस वर्ष भी **श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाछी एवं श्रीधाम मायापुरमें** मध्याह्न भोगराग और प्रसाद सेवाके पश्चात् संध्याको श्रीनवद्वीपमें लौट आनेकी सुव्यवस्था की गई है।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उस भक्ति-अनुष्ठानमें सबान्धव योगदान कर समितिके सदस्यवर्गका परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठानका गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्यद्वारा समितिके सेवाकार्यमें सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। इति १५ फरवरी १९७० ई०

शुद्धभक्त कृपालेश-प्रार्थी—
"**सभ्यवृन्द**"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकानेपर लिखें या भेजें।